यतीन्द्रजीवनचरितम्

उत्तर-प्रदेश-संस्कृत-अकादमी
लखनऊ
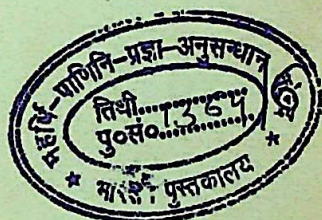
साहित्य-ग्रन्थमाला
[प्रथमं पुष्पम्]

महामहोपाध्यायश्रीशिवकुमारशास्त्रिविरचितम्

यतीन्द्रजीवनचरितम्

अन्वय-हिन्दीव्याख्याकारः
पं० श्रीजयगोविन्दचतुर्वेदः

सम्पादकः
आचार्यकरुणापतित्रिपाठी
कुलपतिचरः,
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य
अध्यक्षश्च
उत्तर-प्रदेश-संस्कृत-अकादम्याः
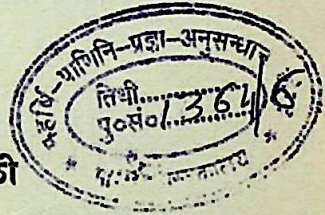
उत्तर-प्रदेश-संस्कृत-अकादमी, लखनऊ

२०४२ तमे वैक्रमाब्दे १९०७ तमे शकाब्दे १९८५ तमे खैस्ताब्दे

SĀHITYA-GRANTHAMĀLĀ
[Vol. 1]

YATĪNDRAJĪVANACARITAM

BY

M. M. ŚRĪ ŚIVAKUMĀRA ŚĀSTRĪ

Anvaya and Hindi Commentary of
Pt. ŚRĪ JAYAGOVINDA CATURVEDA
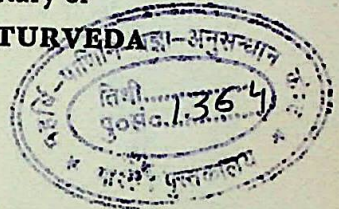
EDITED BY
ĀCĀRYA KARUṆĀPATI TRIPĀṬHĪ
Ex-Vice-Chancellor
Sampurnanand Sanskrit University
Adhyaksha
Uttar Pradesh Sanskrit Academy

UTTAR PRADESH SANSKRIT ACADEMY
Lucknow
1985

Published by—
Dharma Narayana Tripathi
Director, Uttar-Pradesh Sanskit Academy
Lucknow - 226 007

Available at—
Sales Department
Sanskrit Bhavanam, Uttar Pradesh Sanskrit Academy
New Hyderabad, Lucknow - 226 007

First Edition : 1100 Copies

Price : Rs. 45/-

Printed at—
Ratna Printing Works
B 21/42 A, Kamacha,
Varanasi - 221 010
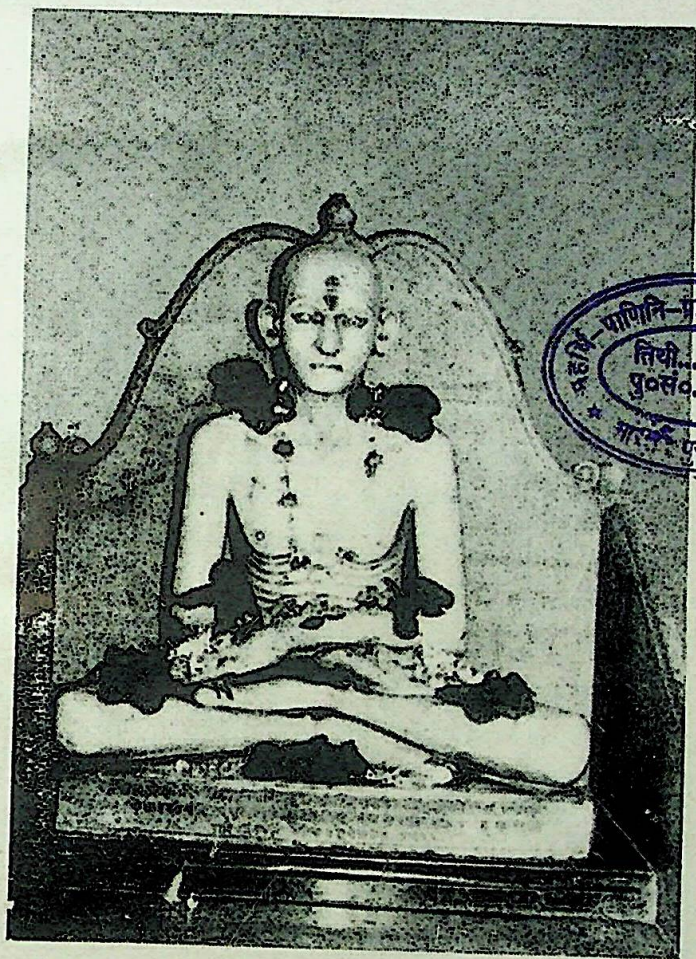
दिगम्बर स्वामी १००८ श्री भास्करानन्द जी महाराज

सम्पादकीय

पाठकों के समक्ष 'यतीन्द्रजीवनचरितम्' का यह मुद्रित हिन्दी-अनुवाद-युक्त अभिनव संस्करण प्रस्तुत करते हुए मैं अपने को अत्यन्त पुण्यशाली और गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ। इसके कई कारण हैं। पर प्रमुख कारण दो हैं।

प्रथम हेतु यह है कि जिस यतीन्द्राचार्य स्वामी श्री १००८ भास्करानन्द जी महाराज का यह काव्यात्मक जीवनचरित है—वे प्रातः स्मरणीय, पुण्यश्लोक यतीन्द्रजी महात्मा पुरुष थे। वे त्यागी थे। वे विरागी थे। अलौकिक विभूतियों की सिद्धि से सम्पन्न थे। वे अनेकानेक शास्त्रों-विद्याओं के गूढ़ मर्म के वेत्ता थे।

वे अपने अन्तिम अनेक वर्षों तक वाराणसी के केदारखंडांतर्गत दुर्गाकुण्ड के पूर्व स्थित तपोवनकल्प उप-वन में निवास करते थे। वे नग्न रहते थे। यथासमय दुःखियों को दुःख से मुक्ति-प्रदान करते थे। उनके अलौकिक चमत्कारों के विषय में सैकड़ों किंवदन्तियाँ आज भी नगर में वृद्धों के मुख से सुनी जाती हैं।

आज की नयी पीढ़ी उन महात्यागी और उनकी विभूतियो, चमत्कारों से अनभिज्ञ होती जा रही है। इन्हीं सबका पुनः स्मरण कराने हेतु यह मुद्रण किया जा रहा है। उन प्रातः स्मरणीय महाविरागी-त्यागी के स्मरण से—सच्चे मन से स्मरण करने पर आज भी स्मरणकर्त्ता का मंगल होता है। इसमें तनिक सन्देह नहीं। अनेक भक्तों के घरों में उनके मन्दिर बनवाकर उन्हीं के काल में प्रातः स्मरणीय यतीन्द्र जी की पूजा होने लगी थी। अतः इस ग्रन्थ का पुनः प्रकाशन करने की योजना—उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी की कार्यपरिषद् ने बनाकर मुझे सम्पादन का भार सौंपा।

दूसरा कारण यह है कि इसके लेखक (संस्कृत मूल-चरितश्लोंको के कवि) सर्वतन्त्रस्वतन्त्र स्वकालीनविद्वद्वरेण्य महामहोपाध्याय श्रीशिवकुमार-शास्त्री (षट्शास्त्री) थे। वे भी साक्षात् शिवावतार माने जाते थे। उनके

जीवन-काल में उनकी और उनके बाद उनके नाम पर शास्त्रीजी के एक-मात्र पुत्र की पण्डितसभा में अग्रपूजा होती थी। उनके मछरहट्टा—राजादरवाजा स्थित भवन के द्वार पर माली बैठता था मालाफूल लेकर। क्योंकि उनके दर्शनार्थी जब भीतर जाते तब मालाफूल से उनकी पूजा करते थे। महामना पं० मदनमोहनमालवीय जी उनके समक्ष अपनी पगड़ी उतारकर साष्टांग दण्डवत् करते थे। शास्त्री जी षड्दर्शनों, धर्मशास्त्र आदि के तो तलस्पर्शी विद्वान् थे ही—व्याकरण और नव्यन्यायशास्त्र के शास्त्रार्थ में भी सदा अपराजेय रहे। भगवान् बाबा विश्वनाथ और अन्नपूर्णा माँ की उन्हें सिद्धि थी। वे नित्य गंगास्नान, विश्वनाथ आदि के दर्शन करते थे। त्रिकाल संध्या एवं नित्य पार्थिवार्चन उनकी दिनचर्या थी। पूजापाठ और शयनादि से बचे शेष समय में शिष्यों को अनवरत विद्यादान ही नहीं करते थे वरन् उनके यहाँ दस-बीस विद्यार्थी भी रहते थे। उनको भोजन-दान और भरण-पोषण भी वे ही करते थे। वे परमदानी, धर्मनिष्ठ, आचारनिष्ठ स्वकालीन अनुपम विद्वान् थे।

पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि जब महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री जी ने इस काव्यात्मक यतीन्द्र चरित के लेखन का भार उठाया तब १००८ यतीन्द्राचार्य में उनकी कितनी अपार श्रद्धा और भक्ति रही होगी! शास्त्रीजी की भक्तिभावना से यह काव्यचरित आद्यन्त ओत-प्रोत हैं। साथही इसमें काव्यकार का शास्त्र-वैदुष्य भी कूट-कूट कर भरा है। प्रसंगवश यथा स्थान षड्दर्शनों की मान्यताओं की भी चर्चा है। प्रातःस्मर्य पूज्य शास्त्री जी मेरे नाना भी थे।

बातें कहने की बहुतहैं। पर यहाँ इतना ही निवेद्य हैं कि उपर्युक्त यही दो प्रमुख कारण थे। इसी से अकादमी ने इसके मुद्रण का भार उठाया। इसके सम्पादन में भी पर्याप्त श्रम करना पड़ा। हिन्दी भाग में पूरा सम्पादन करने का साहस मैंने नहीं किया। फिर भी बड़े श्रम के साथ हिन्दी-अंश की भाषा को यथासंभव और यथाप्रसंग मैंने आधुनिक रूप देने की चेष्टा की है। फिर भी मुझे ही सन्तोष नहीं है। तदर्थ मैं पाठकों से क्षमायाची हूँ। इसमें पुण्यश्लोक यतीन्द्र महाराज का और महामहोपाध्याय श्री शिव-कुमार शास्त्री जी का संक्षिप्त परिचय भी पाठकों के संतोषार्थ दे दिया गया है।

आचार्य श्रीस्वामी शारदानन्द जी ने इसकी प्राचीनमुद्रित प्रतिदी थी जो जीर्णपत्र वाली होने से मुद्रणक्रम में विशीर्ण हो गई। इसके अतिरिक्त प्रूफ-संशोधन आदि में भी सदैव की भाँति इस कार्य में भी उन्होंने सहायता की है। तदर्थ वे विशेषरूप से धन्यवादार्ह हैं।

डॉ० चन्द्रकान्त द्विवेदी (सहायक निदेशक) इसके लेखन में सामग्री—संकलन और रूप रेखात्मक लेखनमें आद्यन्त श्रम किया है। वे आद्यन्त इसके प्रकाशन में रुचि लेते रहे हैं। अतः वे विशेष रूप से धन्यवाद भाजन हैं। अकादमी के निदेशक एवं कोषाध्यक्ष ने शुरु से अन्त तक उत्साह पूर्वक आवश्यक सहयोग दिया है। तदर्थ वे भी धन्यवादार्ह हैं।

इस ग्रन्थ के मुद्रक रत्ना-प्रिंटिग-वर्क्स के स्वत्त्वाधिकारी श्री विनय शंकर पण्ड्या जिन्होंने वारंबार पाठ-संशोधन और प्रूफ-संशोधनादि से न घबराते हुए भी इसका मुद्रण किया—उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ।

त्रुटियों के लिए सम्पादक के रूप में मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

विद्वज्जन कृपाभाजन
करुणापति त्रिपाठी

रामनवमी० २०४२ वै०
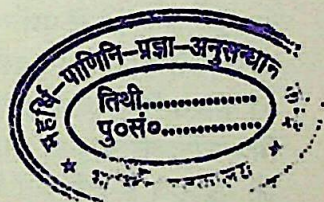
दिगम्बर स्वामी १००८ श्री यतीन्द्र भास्करानन्दजी महाराज

महापुरुष किसी भी जाति, धर्म, सम्प्रदाय या देश के ही नहीं, अपितु निखिल विश्व की धरोहर होते हैं। अपने कठोर त्याग एवं तपस्या के बल से अर्जित ज्ञान-पुष्पों की सुरभि से वे सम्पूर्ण विश्व को आमोदित करते हैं। ऐसे ही ब्रह्मरूप श्री यतीन्द्र १००८ श्री भास्करानन्द जी महाराज का जन्म कानपुर ज़िलान्तंगत मैथेलाल पुर ग्राम में सं० १८९० (१८३३ ई०) आश्विन शुक्लसप्तमी तिथि को हुआ था। आप के पिता श्री मिश्री लाल मिश्र जी लक्ष्मी नारायण भगवान् के उपासक, पवित्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। श्री यतीन्द्र जी महाराज का पूर्वाश्रम नाम श्री मतिराम मिश्र था।

आठ वर्ष की वय में उनका पवित्र यज्ञोपवीत संस्कार हो चुका था। बारहवें वर्ष में शास्त्रोक्त विधि का पालन करते हुए उनका विवाह हुआ था। सत्रह वर्ष की अवस्था में ही महाराज जी भाष्यान्त व्याकरण शास्त्र का सम्यक् रूप से अध्ययन कर विद्वत्समाज में ख्याति प्राप्त कर चुके थे।

अट्ठारहवें वर्ष में आप को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। उसके पश्चात् गृहस्थाश्रम के धर्म को पूर्ण मानकर यतीन्द्र जी महाराज के मन में इस आश्रम को छोड़ने की प्रबल इच्छा जागरित हुई। महाराज की इस विरक्ति को पारिवारिक जीवन के कोई भी बन्धन—माता, पिता, पुत्र, पत्नी, मित्र आदि का मोह या प्रेम—अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। यतीन्द्र जी महाराज के पूर्व जन्म के पुण्यों का ही यह फल था। स्वामी जी एकांत में स्थित होकर दिन-रात विचार करते रहे थे। अन्त में जान लिया कि वास्तव में यह जगत् अज्ञान की माया या अविद्या से उत्पन्न है। इससे दूर जाने में ही श्रेयप्राप्ति होगी। फलतः वैराग्यभावना उनमें बलवती होती गयी।

मन में वैराग्य की पूर्ण भावना के उत्पन्न हो जाने पर उन्होंने गृहस्थाश्रम का परित्याग कर दिया। तदनन्तर सर्वप्रथम स्वामी जी महाराज महाकालेश्वर महादेव की नगरी उज्जयिनी गए। शान्त चित्त एवं ज्ञान-पिपासु यतीन्द्र जी महाराज ने यहाँ ईश्वर का ध्यान करते हुए वेदान्त ग्रंथों के तात्त्विक ज्ञान को मानकर उनका सम्यक् अध्ययन किया।

इसके साथ ही साथ स्वामी जी ने भारत के प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रा भी विधि पूर्वक संपन्न की। इस प्रकार तीर्थ भ्रमण एवं वेदान्त का अध्ययन करते हुए दूसरी बार स्वामी जी का उज्जैन में आगमन हुआ। वहाँ जाने पर स्वामी जी के हृदय में संन्यास-धारण करने की दृढ़ इच्छा उत्पन्न हुई। यतीन्द्र जी महाराज ने तीर्थों के यात्राकाल को अपना वान-प्रस्थ आश्रम का समय मान लिया। इसी प्रकार यज्ञोपवीत एवं अध्ययन के समय को ब्रह्मचर्य आश्रम तथा विवाहादि संस्कार एवं पुत्र रत्न प्राप्ति को गृहस्थ आश्रम का पूर्ण समय मानकर अब प्रथम तीन आश्रमों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ को पूर्णमानकर जीवन के अन्तिम आश्रम अर्थात् संन्यास आश्रम के लिए उपयुक्त समय देखकर जीवन के सत्ताईसवें वर्ष में स्वामी पूर्णानन्द जी महाराज से उन्होंने दण्डसंन्यास की दीक्षा ले लिया।

वे मानते थे कि मानव-जीवन और नरतन की प्राप्ति का यही सर्वोत्तम फल है। इस निर्णय से स्वामी जी को कोई भी लौकिक या पारलौकिक शक्ति विचलित न कर सकी। तब स्वामी जी ने अपने पूर्व आश्रम के नाम का परित्याग कर अपने भक्त जनों के स्मरणार्थ "श्रीभास्करानन्द सरस्वती" —इस नाम को धारण किया। आप के संन्यास आश्रम का प्रारम्भिक समय 'रेवा' नदी के तट पर व्यतीत हुआ।

संन्यास-आश्रम-व्रत धारण करने के बाद थोड़े दिन तक 'रेवा' नदी के तट पर निवास करने के पश्चात् स्वामी जी भगवान् शिव की नगरी काशी आ गए। कुछ दिन काशी-वास के पश्चात् स्वामी जी 'फतेहपुर' जिलान्तर्गत गंगातट पर स्थित 'असनीपुर' गाँव गए और वहीं रहकर भगवद्-भजन-पूजन करते रहे।

परमेश्वर की आराधना में संन्यास-चिह्न दण्ड धारण से विघ्न होता है—ऐसा विचारकर स्वामी जी ने वहीं पवित्र गङ्गा के तट पर अपने दण्डी-संन्यासी के चिह्नरूप दण्ड का भी त्याग कर दिया। उसके कुछ समय बाद आपका आगमन कानपुर हुआ। वहीं पवित्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश में उत्पन्न—'श्री राम चरण जी' ने महाराज की सेवा प्राप्त की। उन्होंने अपना शेष जीवन स्वामी जी के चरण-सानिध्य में ही व्यतीत कर दिया। श्री रामचरण जी का अनुसरण करते हुए कानपुर के ही प्रतिष्ठित खत्री-परिवार के श्री गयादत्त जी ने भी स्वामी जी की आजीवन सेवा का व्रत ले लिया।

इस प्रकार नित्य प्रति अपने भक्तों को ज्ञानोपदेश करते हुए भगवच्चिन्तन करते रहे। अपने प्रिय भक्तों के साथ स्वामी जी महाराज अपनी मातृभूमि के केवल दर्शनार्थ अपने जन्म स्थान को भी अति स्वल्प काल के लिए गए और शीघ्र ही वहीं वापस आ गए। कौपीनधारी यतीन्द्र जी महाराज—जाड़ा-गर्मी एवं बरसात की परवाह किए बिना वहीं गंगातट पर कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान उस अखण्ड ज्योति का ध्यान करते हुए अपने जीवन का बहुत सा समय बिताया। तदनन्तर भारत के सभी प्रमुख तीर्थों का मनोरम भ्रमण करते हुए हरिद्वार गए।

वहीं पटना के प्रसिद्ध शाकद्वीपी ब्राह्मण विद्वान् श्री अनन्तराम से—शारीरक भाष्य, गीताभाष्य तथा उपनिषद्-भाष्य—इन प्रस्थान-त्रयी का विधिवत् पुनः अध्ययन इस लिए किया कि गुरुमुख से प्राप्त विद्या ही यथार्थ एवं फलवती होती है। संन्यास-धारण के १३ वर्ष तक कठोर तप का सदा सेवन, अध्ययन, आराधना, एवं तीर्थ भ्रमण में स्वामी जी के ४० वर्ष पूर्ण हो गए।

स्वामी जी महाराज ने तपस्या एवं साधना से कुछ समय निकाल कर आध्यात्मविषयक ग्रन्थों की सुलभ व्याख्या लिखकर आध्यात्म-प्रेमियों को उपकृत किया। आपने आध्यात्म के साथ ही साथ साहित्य ग्रन्थों का भी प्रणयन किया जिनमें में 'नलोदय काव्य' पर लिखी गई आप की 'संक्षिप्त-व्याख्या' जो वास्तव में ग्रन्थ को सर्व सुगम एवं सरल बना देती है। इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने स्वराज्य सिद्धि की टीका तथा दशोपनिषद् की सुबोध टीका लिखी थी। जो वास्तविक में सुबोध एवं सरल है। आप की ये सभी टीकाएँ काशी से प्रकाशित हैं।

स्वामी जी अन्त में भगवान् शिव की नगरी काशी-वास करने आ गए। जिस नगरी का मोह स्वयं भगवान् शंकर भी संवरण नहीं कर सके थे। देवताओं एवं तपस्वीजनोंतथा विद्या की नगरी ब्रह्मस्वरूपा काशी में भगवान् स्वामी यतीन्द्र जी सं० १९२५ (१८६९ ई०) से ही आकर रहने लगे। स्वामी जी स्वयं भी भगवान् शंकर के रूप थे। यह यतीन्द्र जी महाराज का द्वितीय काशी आगमन था जो उनको सदा के लिए भूतभावन बाबा विश्वनाथ की नगरी का बना दिया।

काशी के केदारखण्ड में विश्वप्रसिद्ध पुराणोक्त जगदम्बा दुर्गा के मन्दिर तथा कुण्ड के पूर्व स्थित आनन्द बाग में रहते हुए आपने कौपीन

का भी परित्याग कर दिया। क्योंकि परमात्मस्वरूप परम-पद प्राप्त यतीन्द्र जी महाराज को अब देहाभिमान भी नहीं रह गया था।

कहा जाता है कि एकाग्रचित्त से ज्योतिस्वरूप का साक्षात्कार करने वाले शिवस्वरूप स्वामी जी की शान्ति, संयम एवं प्रताप के संसर्ग से आनन्द बाग में स्थित लताएँ, पुष्प एवं वृक्ष भी तपस्वीजनों के सदृश मालूम पड़ते थे। किंवदन्ती के अनुसार उस काल से लेकर आज तक पुष्पलता एवं मनोहारी अपनी छटा के लिये प्रसिद्ध आनन्द बाग में किसी भी प्राणी के हृदय में कामदेव—किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं कर पाता है। आज भी कोई व्यक्ति इस पर आश्चर्य नहीं करता इसका कारण यह है कि साक्षात् शिवमूर्ति श्री भास्करानन्द जी महाराज, संग-मरमर के वने विशाल भवन के मध्य समाधि-विराजमान जीवन्त जान पड़ते हैं। नगर महापालिका वाराणसी द्वारा पोषित यह आनन्द बाग आज भी अपने लता-पुष्प के सौन्दर्य से एवं पक्षी कलरव से गूँजता रहता है। विश्व-प्रसिद्ध दुर्गा-मन्दिर एवं मानस-मन्दिर तथा काशी की अत्याधुनिक सबसे बड़ी एवं श्रेष्ठजनों से सुसज्जित कालोनी रवीन्द्रपुरी के समीपस्थ होने पर भी—रजोगुण एवं तमोगुण के अंशों को दूर करने वाले स्वामी जी के चरणरज से सुशोभित होने के कारण यह बाग (पार्क) एक सिद्ध-पीठ के रूप में समझा जाता है।

दिगम्बर स्वामी यतीन्द्र जी महाराज का चरित्र एवं ऐश्वर्य ऐसा अद्‌भुत था जिसके कारण राजा-महाराजा लोग भी उनके चरणरज को अपने मस्तक पर धारण कर अपने जीवन को सफल मानते थे। काशी नरेश महाराज प्रभुनारायण सिंह जी भी स्वामी जी की मूर्ति अपने घर में रखकर नित्य पूजन-अर्चन कर अपने सभी मनोरथ पूर्णकरते थे। बढ़हर नगर की स्वामिनी 'रानी वेदशरण कुँअर' भी अपने यहाँ शिवालय में स्वामीजी की अद्भुत मूर्ति स्थापित कराकर नित्य पूजन किया करती थीं। राजाओं में श्रेष्ठ शत्रुविजयी अमेठीनरेश 'श्रीलालमाधव सिंह जी बहादुर' भी अपने 'निवासबाग' में सुन्दर मन्दिर बनवाकर स्वामी जी की मूर्ति स्थापित कराकर भलीभाँति से पूजन-अर्चन कराते थे। इसी प्रकार दानवीर नागोध नरेश श्री यादवेन्द्रजी महाराज ने भी स्वामीजी की मूर्ति अपने घर में गृहदेवता के रूप में स्थापित की थी। चाँदपुर के जमीदार काशी में विद्वानों की पण्डित-सभा कर प्रतिवर्ष अपूर्व धन देने वाले श्री जगमोहन

सिंह जी ने भी स्वामी जी के चरणों की सेवा करना ही अपने जीवन का परम लक्ष्य बना लिया था। इसके अतिरिक्त राजाओं एवं अनेकानेक परिवारों में स्वामी जी की प्रतिमा की स्थापना कर विधिवत् पूजन होता था और आज भी हो रहा है। स्वामी यतीन्द्रजी महाराज भी अपने भक्तों का सदैव मंगल-चिन्तन किया करते थे।

एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि वाराणसी के ब्रह्मनाल मुहल्ले के निवासी, स्वामी जी के अनन्य भक्त तहसीलदार श्रीशीतलाप्रसाद जी का जवान लड़का छत से गिरकर चेतनाहीन हो गया और मृत्यु से संघर्ष कर रहा था। परिवार के अत्यन्त शोकाकुल होने पर श्रीशीतला प्रसाद स्वामीजी की सेवा में जा पहुँचे और अपने पुत्र के जीवन की याचना की। इस पर स्वामीजी ने अपना चरणामृत दे दिया। इसे लेकर वह घर जा पहुँचे और उन्होंने अपने मृतवत् पुत्र को वह चरणामृत पिला दिया। इससे पुत्र की वेहोशी एवं सारी व्यथा तत्काल नष्ट हो गई। इस प्रकार की अनेकों किंवदंतियाँ स्वामीजी के विषय में प्रसिद्ध हैं।

स्वामीजी महाराज के पुनीत चरित्र वाले पिताजी, तपस्वरूपा भगवती (स्वामीजी की) पत्नी ने काशी में ही शिवस्वरूप को प्राप्त हो स्वामीजी के तेज का आश्रयण किया। पूज्या माताजी पहले ही बदरीनाथ जी की यात्रा में तपोरूप हो वैकुण्ठ लोक को सिधार चुकी थीं।

बीस वर्ष तक आनन्दबाग में रहने के बाद अर्थात् जीवन के ६०वें वर्ष में स्वामीजी भक्तों के कोलाहल से वचने के लिये एकान्तवास करने लगे। जिससे लगता है कि स्वामीजी समय-समय पर ही भक्तों को दर्शन देते थे।

उसी समय मैथिलब्राह्मण विद्वान् श्री चीचनजी ने स्वामीजी महाराज से अति दुर्लभ संन्यास, दीक्षा लेकर काशी को सुशोभित किया। तीर्थराज प्रयाग के कायस्थ कुल में उत्पन्न, मुजफ्फरपुर जिला के नान्हुपुर परगना के स्वामी 'रायपदवी' से युक्त चौधरी रुद्रप्रसादजी ने सभी तीर्थों की यात्रा के अनन्तर शुद्ध चित्त हो काशी में स्वामीजी की सेवा करते हुए मुक्ति लाभ किया। उक्त चौधरीजी के पुत्र श्री महादेव चौधरी ने इस संसार से उद्धार करने वाले स्वामीजी के पुण्यचरित्र के निर्माण में प्रेरणा दी और काशी मेंही समग्र भारत-विद्वन्मण्डल म० भ० पं० शिवकुमारशास्त्री द्वारा लिखाकर प्रकाशित कराया।

संवत् १९५६ की आषाढ़ शुक्ल प्रतिपद् की वह मध्यरात्रि (९ जुलाई १८९९ की मध्यरात्रि १२ बजे) परिव्राजकाचार्य स्वामी भास्करानन्द सरस्वती जी पद्मासन पर अपने नित्य के योगप्रिय आसन पर बैठे-बैठे प्रसन्नमुद्रा में, नेत्रों से सर्वदा ज्ञान-सुधा की वृष्टि करते हुए महाराज जी ने अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर महानिर्वाण को प्राप्त हुए।

स्वामीजी के निधन का समाचार बंगाल से प्रकाशित होने वाली अंग्रेजी पत्र में 'अमृत बाजार पत्रिका' (१८९९ ई० २६ जुलाई) में वड़े अच्छे ढंग से छापा था जिसका तात्पर्य यह है—''वह व्यक्ति (स्वामीजी) तो चला गया, परन्तु वह पीछे छोड़ गया अपने ही उदात्त व्यक्तित्व को और अपने निरञ्जन एवं पावनतम जीवन को, अपने तपःपूत एवं पवित्रतम सत्ता को, पवित्रता के आदर्श को और मानवीय पूर्णताओं के अनुपम उदाहरण को।'' स्वामी भास्करानन्दजी के आध्यात्मिक जीवन की यह एक निष्कलंक शाब्दिक झाँकी है।

म० म० श्री शिवकुमार शास्त्री जी का संक्षिप्त जीवन-परिचय

जीवन-चरित—

महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री (षट्शास्त्री) जी का जन्म 'उन्दी' नामक गाँव में संवत् १९०४ वि० (सन् १९५७ ई०) की फाल्गुन कृष्ण एकादशी को हुआ था। उनके पिता पवित्र सरयूपारीण ब्राह्मण थे। उनका नाम श्री रामसेवक मिश्र था। वे अपने माता-पिता के एकाकी सन्तान थे। शास्त्री जी की माता का नाम मतिरानी देवी थी। उनका वात्सल्य प्रेम भी शास्त्री जी को अल्प ही मिल सका था। वे भगवान् आशुतोष की परम उपासिका थीं।

श्री शास्त्री जी के जन्म के विषय में कहा जाता है कि माता-पिता की सभी उपासना, पूजा-पाठ, व्रत आदि करने पर भी सदैव उन्हें मृत सन्तान का ही जन्म होता था। इस लिए अन्तिम समय में माता-पिता बहुत दुःखी होकर अपने कुलगुरु के पास गए।

गुरु जी ने 'मिश्रदम्पती' को एक 'विशेष व्रत' करने का उपदेश दिया। इस व्रत के सम्बन्ध में उन्हें बताया गया कि किसी कपिला गाय को गेहूँ खिलाया जाय और उसके गोबर से जो गेहूँ प्राप्त हो उसे साफकर उसके आँटे का प्रयोग प्रत्येक प्रदोष व्रत को किया जाय। श्री रामसेवक मिश्र-दम्पती ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर स्वयं भगवान् शिव की आराधना एवं पूजन-अर्चन प्रारम्भ किया। साथ ही पत्नी को गोसेवा व्रत करने का आदेश दिया। इस व्रत एवं साधना तथा शिव की कृपा से श्री मिश्र के घर में पुत्ररत्न का जन्म हुआ। पिता ने शिव की आराधना से प्राप्त पुत्र का नाम भी 'शिवकुमार' रख दिया। इस बालक शिवकुमार के शरीर पर भगवान् शिव के स्पष्ट चिह्न दृष्टिगोचर होते थे। जन्मकाल में बालक के ललाट पर चन्द्रमा एवं त्रिपुण्ड्र, जिह्वापर त्रिशूल और ग्रीवा पर शिव के नीलकण्ठत्व की नीलिमा विराजमान थी।
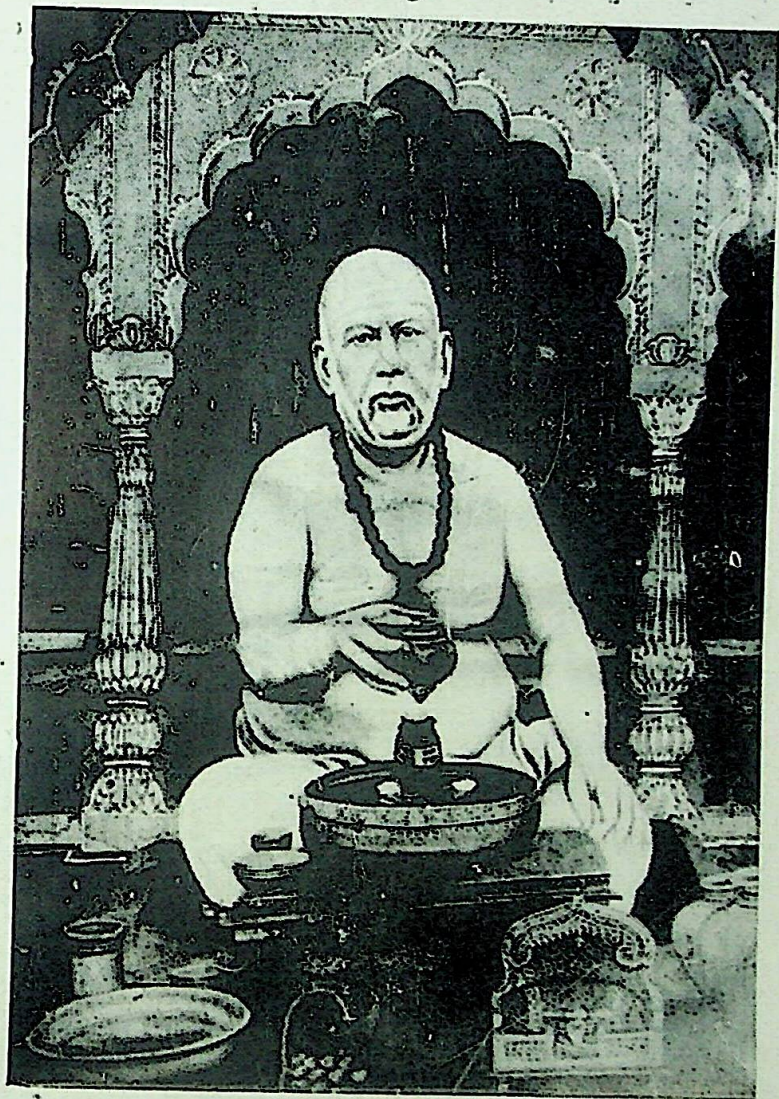
ग्रन्थकर्ता
म० म० श्री शिवकुमार शास्त्री जी

एसे विचित्र गुणों से युक्त बालक को परिवार के लोग त्यागने का विचार कर ही रहे थे कि पिता ने यह आश्वासन दिया कि यह बालक कुलगुरु के आशीर्वाद के अनुरूप हुआ है यह त्याज्य नहीं है। यह कुल-भूषण होगा।

पिता रामसेवक मिश्र जी की सबसे बड़ी अभिलाषा थी कि भगवान् शिव के प्रसाद से प्राप्त यह पुत्र यशस्वी एवं विद्वान् बने। परन्तु जब उनकी यह कामना फलवती सिद्ध हुई तब दुर्भाग्य से वह अपने पुत्र का यशोगान सुनने के लिए नहीं रह गए थे। जब यह बालक केवल तीन वर्ष का था तभी बालक शिवकुमार के शिर से पिता के वात्सल्य प्रेम की छत्र-छाया सदा के लिए समाप्त हो गई। इससे बालक शिवकुमार का पालन-पोषण एवं विद्यारम्भ चाचा के संरक्षण में हुआ था। पाँच वर्ष की अवस्था में ही यह बालक बालू का शिव-पिण्ड बनाकर पार्थिव पूजन करने का प्रयास करने लगा था।

शिक्षा—

बालक शिवकुमार का प्रारम्भिक अध्ययन नवें वर्ष में 'बेतिया' के प्रसिद्ध विद्वान् पं० वाणीदत्त चतुर्वेदी जी के सान्निध्य में हुआ था। किसी कारण से यह क्रम अधिक दिनों तक नहीं चल सका और चाचा जी ने उन्हें गाँव वापस भेज दिया। गाँव आने पर इस बालक को भैंस गाय चराने तथा घर के अन्य छोटे-बड़े कार्य चाचा जी की आज्ञा के अनुसार करने पड़ते थे। चाचा जी की आज्ञा का पालन करते हुए जब भी कभी उन्हें समय मिलता वे गहन चिन्तन करने लगते थे। शास्त्री जी पण्डितों के घराने में पैदा हुए थे। इसलिए उनके घर में संस्कृत पुस्तकों का भण्डार सुरक्षित था। जब भी समय मिलता तब वे वेठन खोल कर किसी पुस्तक के पन्ने पढ़ने के प्रयास में लग जाते थे। इस प्रकार स्वाध्याय ही उनका व्यसन बन गया था।

शास्त्री जी के जीवन के ग्यारहवें वर्ष में एक ऐसी घटना घटी कि उनकी जीवन-धारा ही बदल गई। वे अपने चाचा की आज्ञा के विरुद्ध घर में लुक-छिपकर अध्ययन करने में व्यस्त हो गए थे। चाचा की आज्ञा पालन कर वह भैंस चराने नहीं गए और अपने अध्ययन में लगे रहे। आज्ञापालन न करने की अवज्ञा और पठन के निरर्थक कर्म के लिए चाचा

जी ने उनकी पिटाई कर दी तथा व्यंग्य करते हुए कहा कि इन संस्कृत की पुस्तकों को पढ़कर क्या तुम बृहस्पति या वाचस्पति बनोगे ? अथवा पाणिनि या पतञ्जलि बनना चाहते हो ? चाचा के इन वाग्बाणों के प्रहार की मर्मान्तक पीड़ा तथा पिटाई श्री शिवकुमार शास्त्री जी के लिए वरदान सिद्ध हुई विद्याध्ययन से विरक्ति के स्थान पर उसमें उसकी अनुरक्ति और बढ़ गई। पितृव्य की ताड़ना से त्राण पाने तथा विद्याध्ययन के लिए विधवा माँ के हजार समझाने तथा अनुनय विनय करने पर भी घर छोड़कर चौदह वर्ष की वय में वे काशी आ गए और वे आजीवन कभी भी वापस घर नही गए। उपर्युक्त घटना ने उनके जीवन की गति को ऐसी दिशा दी जिसके कारण आगे चलकर वे भारत-विख्यात विलक्षण प्रतिभा के धनी विद्वान् बने।

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश पाकर प्रसिद्ध व्याकरण विद्वान् पं० दुर्गादत्त से 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' पढ़ना प्रारम्भ किया। उन दिनों विद्यार्थी शिवकुमार काशी से तीन कोस (९ कि० मी०) दूर किसी गाँव में रहते थे और प्रति दिन प्रातः काशी आकर गंगा-स्नान करते थे तथा माँ गंगा के पावन जल से बाबा विश्वनाथ का अभिषेक करते थे। विद्यालय में अध्ययन करने के अनन्तर सायं ४ बजे अपने निवास पर वापस लौटते। साढ़े चार वर्ष में ही उन्होंने सपरिष्कार और भाष्यान्त व्याकरण का विधिवत् अध्ययन कर लिया।

इसके अनन्तर विद्यालय के न्याय-अध्यापक पं० कालिप्रसाद शिरोमणि नामक बंगदेशीय नैयायिक विद्वान् से हेत्वाभास के गम्भीर विचार के साथ संपूर्ण नव्यन्याय का अनुशीलन कर नव्यन्याय में अलौकिक व्युत्पत्ति प्राप्त कर ली। आपने दार्शनिक प्रवर पं० गणेशश्रौति से खण्डन-खण्डखाद्य तथा स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती से 'अद्वैतसिद्धि' और 'पूर्वमीमांसा' दर्शन का गम्भीर अध्ययन किया।

छात्रावस्था में ही शास्त्रीजी की शास्त्रव्युत्पत्तिजन्य बुद्धि को देख महा-पंडित बालशास्त्री जी ने कहा था—"वत्स शिवकुमार, तुम्हारी विलक्षण प्रतिभा एवं शास्त्रों में गाढ़ अनुराग को देख रहा हूँ। यदि तुम हमारे गुरुजी पंडित राजाराम शास्त्री जी से कुछ अध्ययन कर लेते तो बड़ा कल्याण होता।" शिवकुमार जी ने तत्काल उत्तर दिया—"गुरुजी तो बहुत वृद्ध हो गए हैं। यदि आप अपने ही पास हमें अध्ययन का अवसर दें तो मैं अपने

को धन्य समझता।" महापण्डितश्री श्री बालशास्त्री रानडे 'बाल सरस्वती' जी सरस्वती के वरद पुत्र माने जाते थे। आपका शास्त्रार्थं आर्य-समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द से हुआ था। पं० बालशास्त्री जी ने शिवकुमार जी को अपना अन्तेवासी बनाकर जटिल परिष्कारों का तथा शब्दखण्ड में व्युत्पत्तिवाद एवं शक्तिवाद आदि विषयों का गम्भीर अध्ययन कराया। इस प्रकार प्रतिभा, परिश्रम तथा त्याग एवं तपस्या के बलपर शास्त्री जी ने चतुरस्र पाण्डित्य का अर्जन कर लिया।

अध्यापन—

अध्ययन समाप्त होते ही शास्त्रीजी को संस्कृत कालेज में ही १८७५ ई० में व्याकरण शास्त्र के प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति हो गई। अल्पावधि में ही शास्त्री जी की लोकप्रियता को बढ़ते देखकर विद्यालय के एक वर्ग के अध्यापकों के कुचक्र से सन् १८७९ में तत्कालीन गर्वमेन्ट संस्कृत कालेज के प्राचार्य राइट साहब को त्याग पत्र देकर हमेशा के लिए उन्होंने छुट्टी प्राप्त कर ली। तत्कालीन दरभंगा नरेश श्री लक्ष्मीश्वर सिंह जी ने शास्त्री जी की विद्वत्ता से अतिप्रभावित होकर अपने राजकीय विद्यालय में प्रमुख अध्यापक का पद दिया। कुछ काल तक शास्त्री जी दरभंगा में प्रधानाचार्य रहे। पर वे काशी और बाबा विश्नाथ के वियोग से हमेशा दुःखी रहते थे।

गुणग्राही दरभंगानरेश राजा श्री लक्ष्मीश्वर सिंह जी ने शास्त्री जी के अभिलाषानुसार काशी में एक संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना कर उन्हें विद्यालय का अध्यक्ष बना दिया। शास्त्री जी के समय में यह विद्यालय काशी का गौरव था। शास्त्री जी के साथ में ही यहाँ म० म० सुधाकर द्विवेदी, म० म० तात्याशास्त्री, म० म० प्रमथनाथतर्करत्न जैसी विभूतियाँ अध्यापन कराती थीं।

उसी समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रख्यात कुलपति श्री आशुतोष मुखर्जी ने पं० प्रमथनाथ तर्करत्न के द्वारा रु० पाँच सौ प्रतिमास पर अपने यहाँ संस्कृत कालेज में अध्यापन करने का शास्त्रीजी महाराज को निमंत्रण दिया। परन्तु बाबा विश्वनाथ और काशी की गंगा माता का सान्निध्य छोड़कर धनमात्र के लोभ से कहीं भी न जाने के अपने दृढ निश्चय पर वे अडिग बने रहे।

शास्त्रीजी की दिनचर्या—अध्ययन-अध्यापन, जप-पूजा के सम्पादन की कहानी भी मनोरम है। प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर वे कुछ काल तक ग्रन्थों का अध्ययन करते तदनन्तर वे मणिकर्णिका अथवा ललिताघाट पर स्नान और प्रातः सन्ध्या कर एवं गायत्री जप करके दाहिने हाथ में गंगा-जमुनी कमण्डलु तथा बाएँ हाथ के कन्धे पर गंगा-जल से पूर्ण, विशाल ताम्रकलश लिए हुये अपने दरभंगा विद्यालय आ जाते जहाँ पात्रों को यथास्थान रखकर शास्त्री जी छात्रों के अध्यापन में लग जाते।

१० बजे जब विद्यालय बन्द हो जाता अपने दोनों जलपात्रों के साथ बाबा विश्वनाथ के मन्दिर में जाकर मन्त्रोचार-पूर्वक विश्वनाथ मूर्ति को स्नान कराते। पुनः ध्यान कर मध्याह्न स्नान तथा सन्ध्या के लिये दशाश्वमेध घाटपर पहुँचते थे। स्नानादि कृत्य से निवृत्त होकर पूर्ववत् जलपात्रों को धारण कर अपने आवास रेशमकटरा राजा दरवाजा के समीपस्थ मछरहट्टा के घर गंगाजलके साथ पहुँचते थे। वहाँ उसी गङ्गाजल से भगवान् नर्मदेश्वर का अभिषेक करते थे। अभिषेक के अनन्तर २-२½ बजे शास्त्री जी भोजन कर उपस्थित विद्वानों के साथ शास्त्रचर्चा तथा विद्यार्थियों को वेदान्त व्याकरण-न्याय-धर्मशास्त्र आदि विषयों का अध्यापन कराते थे। इन विषयों पर व्यवस्था भी वे विद्यार्थियों से ही बोलकर लिखवाते थे। सन्ध्या समय पूजन-पाठ, रात्रि में शास्त्रचर्चा तथा विश्राम ही शास्त्री जी की प्रतिदिन की दिनचर्या बनकर रह गई थी।

श्रीशिवकुमार शास्त्री जी दार्शनिक दृष्टि से अद्वैतवादी वेदान्ती थे। फलतः अपने पक्ष के मण्डन के निमित्त म० म० पं० रामधन पञ्चानन जैसे विद्वान् के द्वैतमत का पुंखानुपुंख खण्डन कर उन्हें परास्त किया था। श्री नाथपीठाधिपति श्री गोवर्धनलाल महाराज के सामने भारतमार्तण्ड श्री गद्दूलाल के साथ श्री शास्त्री जी का तुमुल शास्त्रार्थ हुआ जिसमें विशिष्टाद्वैतपरक मत को शास्त्री जी ने धज्जियाँ उड़ाकर उन्हें मौन कर दिया था।

शास्त्री जी की विद्वत्ता से प्रभावित होकर अंग्रेज सरकार ने उन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि से तथा शृङ्गेरीपीठ के शंकराचार्य ने सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपण्डितराज पदवी से अलंकृत कर सुवर्णपदक दिया तथा

वामरा के राजा ने 'अत्रैव विद्यारसः' की उपाधि एवं सुवर्णपदक देकर अपनी श्रद्धाभावना अर्पित की थी। कलकत्ता की कान्यकुब्ज सभा ने 'विद्यामार्तण्ड' की उपाधि से अलंकृत किया था।

शास्त्री जी की धर्म-व्यवस्था का सर्वत्र आदर होता था। उसे अकाट्य माना जाता था। शास्त्री जी की धर्म-व्यवस्था का आदर देश के हिन्दू ही नहीं विदेशों में स्थित हिन्दू भी करते थे। इतना ही नहीं शास्त्रीजी ने अपनी धर्म-व्यवस्था देकर सन् १९११ की मानव-गणना में हरिजनों को हिन्दुत्व से बहिष्कृत होने से बचाया था।

इस प्रकार अपनी विद्वत्ता से समग्र भारतवर्ष की पण्डित-मण्डली को उपकृत तथा चमत्कृत कर महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री जी ने विक्रम सं० १९७५ (१९१८ ई०) में सौर भाद्रमास के द्वितीय दिन शनिवार के पूर्वार्द्ध ९½ बजे काशी में अपनी ऐहिक लीला का संवरण किया और भगवान् बाबा विश्वनाथ से शिव-सायुज्य प्राप्त किया।

× × ×

वैदुष्यं विलयं गतं बुधसभा शून्यां दशां लम्भिता
शास्त्रार्थो विरसोऽभवन्नवनवा लीनास्तु ताः कल्पनाः।
शास्त्रं व्याकरणं तथाक्षचरणादिष्टं च सद्दर्शनं
यातं तत् सकलं गते शिवकुमाराख्ये बुधे तत्क्षणात् ॥

कृतियाँ—

महामहोपाध्याय श्री शिवकुमार शास्त्रीजी की रचना यतीन्द्रजीवन-चरितम् अत्यन्त स्पृहणीय एवं संग्रहणीय हैं। शास्त्री जी ने एक 'यतीन्द्र-स्तोत्रम्' का भी प्रणयन किया था। 'यतीन्द्रजीवनचरितम्' में लम्बे-लम्बे वृत्तों का आधिक्य हैं। इनमें विभिन्न दर्शनों के सिद्धान्तों का वर्णन सुबोध शैली में प्रौढता से किया गया है।

इसके अतिरिक्त शास्त्रीजी के आश्रयदाता दरभंगानरेश श्री लक्ष्मीश्वर सिंह जी की कीर्ति-कौमुदी का चतुर्दिक् विस्तार करने वाली कमनीय कृति का नाम 'लक्ष्मीश्वरप्रताप' काव्य है। इसमें लक्ष्मीश्वर सिंह जी के प्रताप का चमत्कृत साहित्यिक ढंग से वर्णन किया गया है। बहुत खोजने पर भी यह पुस्तक अब अत्यन्त दुर्लभ है, बहुत कम उपलब्ध होती है। केवल नमूने के तौर पर पण्डित परम्परा से सुना गया उसका एक उत्कृष्ट पद्य दे रहा हूँ—

पूर्णा चान्द्री कला वा, दिशि दिशि लहरी क्षीरसिन्धूत्थिता वा
कुन्दालीमालिका वा, शिवनिलयगिरेः कान्तिरेवोद्गता वा।
हंसानां संहतिर्वेत्यवनितलबुधैस्तक्यंते यस्य कीर्तिः
सोऽयं लक्ष्मीश्वराख्यो जगति विजयते नायकस्तीरभुक्तेः॥[1]

शास्त्री जी के द्वारा लिखित 'लिङ्गधारण-चन्द्रिका' ग्रन्थ की व्याख्या विद्वानों में आदर्श मानी जाती है। यह ग्रन्थ उस जंगम शैव संप्रदायका है जिसके प्रत्येक अनुयायी चाँदी की पेटिका में संपुटित शिवलिंग सर्वदा धारण किए रहते हैं। इस प्रथा के वैदिकत्व के समर्थन में '**लिङ्गधारण-चन्द्रिका**' ग्रन्थ उपलब्ध होता है। ग्रंथ का प्रणयन इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक बसवेश्वर के पौत्र तथा महेशाचार्य के पुत्र नन्दीश्वर ने किया था। काशीस्थ विश्वाराध्य जंगममठ के अध्यक्ष महासन्त राजेश्वर शिवयोगी के विशेष आग्रह से म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री जी इसके ऊपर 'शरत्' नाम्नी व्याख्या सन् १९०३ ई० में की थी जिसमें ग्रन्थ के कठिन अंश अति सरल एवं सुबोध हो गए। ग्रन्थ के अन्त में पण्डित जी का कथन है—

अस्या विश्वेशपादाब्जपरत्वं वीक्ष्य हर्षतः।
व्याख्यां शिवकुमारोऽहमकार्षं तत् शुभास्त्वियम्॥

इसी ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठ पर शास्त्री जी के चित्र के साथ परिचय में यह पद्य दिया गया है।

प्रस्तावे विदुषां यस्य प्रथमं नाम गृह्यते।
सोऽयं शिवकुमाराख्यः पण्डितः पण्डिताग्रणीः॥

इस प्रकार शास्त्री जी द्वारा लिखित टीका शास्त्री जी के वैदिक एवं दार्शनिक वैदुष्य की सद्यः प्रकाशिका है।

पं० पूर्णचन्द्र दे नामक प्रख्यात बंगीय विद्वान् के विशेष आग्रह पर शास्त्री जी ने 'शिवमहिम्नः स्तोत्रम्' के ऊपर भी एक विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी थी। अब पूरी टीका तो उपलब्ध नहीं होती केवल कुछ श्लोंको की व्याख्याएँ मिलती हैं।

शिष्यमण्डली—

शास्त्री जी की शिष्य मंडली बहुत ही विस्तृत थी। कुछ प्रधान प्रचुर-कीर्ति-अर्जन करने वाले शिष्यों के ही नाम निम्नलिखित हैं—

---

१. यह श्लोक '**यतीन्द्रजीवनचरितम्**' ग्रन्थ में भी में उपलब्ध होता है। (देखें श्लोक सं० १३०)।

(१) म० म० डॉ० गंगानाथ झा, (२) विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन ओझा, (३) शास्त्रार्थमहारथी पं० हाराण चन्द्र भट्टाचार्य, (४) वैयाकरण केसरी म० म० पं० जयदेव मिश्र, (५) म० म० शिवशंकर झा, (६) पं० दीनबन्धु झा, (७) पं० अच्युताश्रम मुनि, (८) पं० राजारामशास्त्री, (९) पं० महादेवशास्त्री बाक्रे, (१०) पं० रामावधि शर्मा, (११) पं० अच्युतानन्द त्रिपाठी, (१२) पं० निरीक्षणपति तिवारी, (१३) पं० चुम्बे झा, (१४) यामिनीनाथ 'तर्कवागीश और (१५) पं० श्रीकर शास्त्री आदि।

संस्मरण—

पं० शिवकुमार शास्त्री जी जितने बड़े विद्वान् थे उतने ही बड़े साधक भी थे। भूतभावन विश्वनाथ एवं माता जगज्जननी अन्नपूर्णा उनके इष्टदेव थे। इसी के परिणाम स्वरूप जो कोई भी उनका अनिष्ट करना चाहता था। उसको उसका उलटा ही फल भोगना पड़ता था।

परन्तु शास्त्रीजी की समादर भावना अनेक विद्वानों के हृदय में काँटे की तरह चुभती थी। इससे वे शास्त्री जी का अनिष्ट एवं अपमान करने का कुचक्र किया करते थे। एक बार इन विरोधियों ने दालमण्डी की एक वृद्ध वैश्या को अपना माध्यम बनाकर घोर अपमान की योजना बनाई। भरे चौक क्षेत्र में उस वेश्या ने शास्त्री जी को कुशब्द कहा और घृणित आरोप लगाकर धन की मांग करने लगी। शास्त्री जी इस षड्यन्त्र को समझ गए और अपने साथ विद्यालय जा रहे विद्यार्थियों में से एक विद्यार्थी को उतनी ही द्रव्यराशि घर से लाकर देने को कह कर अविचल भाव से विद्यालय जाकर अध्ययन-अध्यापन कार्य में लग गए। बात यहीं समाप्त हो गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही वही वैश्या रोती-धोती पण्डित जी के घर पहुँची और कहने लगी—शास्त्री जी मेरा अपराध क्षमा करें। मुझे अमुक-अमुक पण्डितों ने एक मोटी धनराशि देकर आपको अपमानित करने के लिये प्रेरित किया था। मेरे इस दुष्कृत्य का परिणाम मेरी जवान बेटी भोग रही है। आज रात्रि से ही उसके पेट में असीम पीड़ा हो रही है जिस पर किसी भी दवा का कोई प्रभाव भी नहीं पड़ रहा है। बेटी ही मेरी जीविका का साधन है। उसके बिना मैं अनाथ हो जाऊँगी। वह मृत्यु शैय्या पर अब मृत्यु से संघर्ष कर रही है। भगवन् ! आप उसे बचा लीजिए।" शास्त्री जी ने विनम्र भाव से कहा—मैंने तो तुम्हारे अनिष्ट के लिये कुछ भी नहीं

किया है। बाबा विश्वनाथ का स्मरण करो और यह जल पिलाओ। सब कुशल होगा। इतना कहकर शास्त्री थी ने आमन्त्रित जल उसे दे दिया। उसे पीते ही वह वेश्या-पुत्री तत्काल रोगमुक्त हो गई थी। इस चमत्कार की चर्चा उस समय घर-घर में सामान्यतः होती थी। यह शास्त्री जी की दिव्य साधना का ही चमत्कार था।

एक और चमत्कार की कथा भी कम विस्मयप्रद नहीं है।—'किसी शास्त्रार्थ में शास्त्री जी ने अपने पक्ष के समर्थन में पातञ्जल व्याकरण महाभाष्य की कतिपय पंक्तियों को धड़ल्ले से सुना दिया। प्रतिपक्षी द्वारा उन पंक्तियों को महाभाष्य में न होने के आग्रह करने पर महाभाष्य को पोथी मंगाई गई और उन पंक्तियों का सद्भाव देखकर प्रतिपक्षी पण्डित आश्चर्यचकित हो गए। शास्त्रार्थ के पश्चात् जब उस विद्वान् ने अपने घर जाकर अपनी महाभाष्य की पोथी देखी तो उसमें तथाकथित पंक्तियाँ वास्तव में नहीं थीं। शास्त्री जी से इस विस्मय के विषय में पूछा गया तो वे भी मौन ही रहे। विद्वानों को विश्वास था भूतभावन बाबा विश्वनाथ ने ही अपने भक्त की प्रतिष्ठा के रक्षणार्थ महाभाष्य में उन पंक्तियों को अंकित कर उस समय दिखा दिया था। यह भी शास्त्रीजी की साधना का चमत्कार था। इस प्रकार के उनके अनेक चमत्कारों की कथाएँ उनकी शिवसायुज्य-प्राप्ति के बाद बहुत दिनों तक लोक में वृद्धजन सुनाया करते थे। अब भी कभी-कभी ये बातें सुनने को मिल जाती हैं।

उनके चतुरस्र पाण्डित्य, अनवरत अध्यापनशीलता, दरिद्र-सहायता, विद्यार्थियों के विद्यादान के साथ-साथ भोजन, वस्त्र और आवश्यक धन की सुविधा देना, धर्मनिष्ठा, शील, सौजन्य आदि गुणों की गाथा आज भी संस्कृत पंडित-मंडली में विख्यात है।

ऐसे महापुरुष ने जगद्वन्द्य यतीन्द्र दिगंबर स्वामी श्री श्री १००८ भास्करानन्द का चरित काव्यात्मक शैली में लिखा है। इसी से श्री श्री १००८ भास्करानन्दजी की सिद्धि और त्याग का महत्त्व स्पष्ट है। इसी कारण उनके भक्त लेखक म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री का अति संक्षिप्त परिचयात्मक जीवन-परिचय उपस्थित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

ग्रन्थप्रणेता म० म० शिवकुमार शास्त्रीजी
(राजकीय संस्कृत कालेज, वाराणसी के अध्यापन काल का चित्र)

सूचीपत्रम्

———

आनन्द बाग स्थित यतीन्द्र स्वामी भास्करानन्द जी की समाधि

ॐ

पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीण-सर्वतंत्रस्वतंत्र-महामहोपाध्याय-

श्रीशिवकुमारशास्त्रि-

विरचितं

यतीन्द्रजीवनचरितम्

श्रीगणेशाय नमः

यत् तद् ब्रह्मपुरान्तरालदहराभ्यन्तर्निविष्टं नभो
यस्मिन्नोतमिदं नभःप्रभृति यद्भूमा श्रुतौ श्रूयते ।
अन्तर्नाडि नियम्य मारुतगतिं यद् योगिभिर्ध्यायते
तेजस्तच्छिवयोस्तनोतु जगतामुद्वेलमानन्दथुम् ।। १ ।।

अन्वयः—यद्तद्ब्रह्मपुरान्तरालदहराभ्यन्तर्निविष्टम् नभः । यस्मिन् इदम् नभःप्रभृति ओतम् । यत् श्रुतौ भूमा श्रूयते । योगिभिः अन्तर्नाडि मारुतगतिम् नियम्य यद् ध्यायते । शिवयोः तत् तेजः जगताम् उद्वेलम् आनन्दथुम् तनोतु ।। १ ।।

अन्वयार्थ—जो (तेज) उस शरीर के अन्तर्गत जो हृदय कमल उस के भीतर आकाश स्वरूप है । और जिस में यह आकाश आदि पोहा हुआ है । जो वेद में (सबसे) बड़ा सुनाई देता है । योगियों से नाडी के भीतर प्राण वायु की गति को रोक कर जो ध्यान किया जाता है । महादेव पार्वती का वह तेज जगत् के निःसीम आनन्द को बढ़ावे ।। १ ।।

भावार्थ—जो तेज ब्रह्मपुर नाम शरीर के अन्तर्गत और जो हृदय कमल उसके मध्य में आकाश स्वरूप है । और जिसमें ये आकाश आदि सब पदार्थ पोहे (पिरोये) हुए हैं । और वेद में जो सबसे बड़ा कहा गया है । और जिसे योगी लोग सुषुम्ना नाडी के भीतर श्वास को रोक कर ध्यान करते हैं, महादेव पार्वती का वह तेज जगत् के आनन्द को अत्यन्त बढ़ावे ।। १ ।।

लब्ध्वा जन्म जगत्सभाजितकुले धृत्वा क्रमेणाश्रमां-
स्त्रीन् मायामयमाकलय्य भुवनं तुर्याश्रमे यः स्थितः ।
आबालस्थविरं च यत्र जगतो ब्रह्मात्मताधीर्दृढा
व्याप्तुं काङ्क्षति नूनमद्य नितरां चेतस्तिरश्चामपि ।। २ ।।

अन्वयः—यः जगत्सभाजितकुले जन्म लब्ध्वा । क्रमेण त्रीन् आश्रमान् धृत्वा । भुवनम् मायामयम् आकलय्य । तुर्याश्रमे स्थितः । यत्र च जगताम् आबालस्थाविरम् ब्रह्मात्मताधीः दृढा । अद्य नूनम् तिरश्चाम् अपि चेतः नितराम् व्याप्तुम् काङ्क्षति ।। २ ।।

अन्वयार्थ—जो जगत् पूजित कुल में जन्म ले । क्रम से तीन आश्रमों को धारण कर । संसार को माया-रचित विचार कर । चौथे आश्रम में स्थित हैं । और जिस में जगत् के लड़कों से लेकर बूढ़ों तक की – यह ब्रह्म स्वरूप हैं—ऐसी स्थिर बुद्धि है । अब निश्चय होता है—कि (यह ब्रह्म-स्वरूप हैं यह बुद्धि) पशु पक्षियों के भी चित्त में भली भाँति व्याप्त हुआ चाहती है ।। २ ।।

भावार्थ—संसार में सब से उत्तम कान्यकुब्ज ब्राह्मण के कुल में जन्म लेकर—विना ब्रह्मचर्य्य आदि तीनों आश्रमों का क्रम से सेवन किए मनुष्य चतुर्थ आश्रम संन्यास का उत्तम अधिकारी नहीं हो सकता । इसी कारण से पूर्व जन्म का पुण्य-फल-रूप वैराग्य पहिले से था तो भी तीनों आश्रमों का क्रम से सेवन किया । और जगत् को माया-रचित मिथ्या जान जिन्होंने संन्यास आश्रम को धारण किया है, जिसको बालक से लेकर बूढ़े तक संसार के सब लोग ब्रह्म स्वरूप जानते हैं, केवल मनुष्य ही ऐसा मानते हों सो नहीं वरन् पशु-पक्षी भी अब इन योगीन्द्र महाराज को ब्रह्मस्वरूप ही मानते हैं—ऐसा मालूम पड़ता है ।। २ ।।

यस्येन्द्रादिसमस्तदेवपदवीसौख्यं घृणाधायकं
मिथ्यास्नेहमयान्धकारपटलीविध्वंसभानुश्च यः।
यल्लोकनमात्रमेव विपुलामुन्मूल्य पापावलीं
प्रत्यक्तत्त्वविशुद्धबोधविधये श्रद्धावतां कल्पते ।। ३ ।।

अन्वयः—इन्द्रादिसमस्तदेवपदवीसौख्यम् यस्य घृणाधायकम्। यः च मिथ्यास्नेहमयान्धकारपटलीविध्वंसभानुः। यस्य आलोकनमात्रम् एव विपुलाम् पापावलीम् उन्मूल्य। श्रद्धावताम् प्रत्यक्तत्त्वविशुद्धबोधविधये कल्पते ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—इन्द्र आदि सब देवताओं की पदवी का सुख जिनके घृणा का कारण है। और जो झूठे मोह रूपी अंधेरे के परदे के नाश करने में सूर्य हैं। जिनका केवल दर्शन ही बड़े-बड़े पापों की पङ्क्ति को नाशकर। श्रद्धावानों की अन्तरात्मा को उत्तम ज्ञान के लिए समर्थ कर सकता है।। ३ ।।

भावार्थ—जो इन्द्र, वरुण, कुवेर आदि सब बड़े-बड़े देवताओं के राज्य-सुख को संसार की और वस्तुओं के समान नाशवान समझ तुच्छ समझते हैं और जो मिथ्या स्नेह रूपी अँधेरे को दूर करने के लिए सूर्य सदृश हैं। जैसे सूर्यनारायण दिन में बाहर के अंधेरे को नाश करते हैं उसी प्रकार योगीन्द्र जी रात दिन श्रद्धावानों के हृदय के भीतर के अन्धकार को नाश किया करते हैं। जिन का एक दर्शन ही श्रद्धावानों के अनेक जन्म के पापों को नाशकर उनको अन्तरात्मा के उत्तम ज्ञान के लिए समर्थ कर सकता है।। ३ ।।

पुण्या यस्य कुटुम्बिनी मतिरियं ध्यानं परं भोजनं
भोगश्चापि तदेव यस्य विदितं यत्पट्टवस्त्रं दिशः ।
भूपालावलिभाललग्नमुकुटप्रोद्यल्ललामार्चिषा
यन्नीराजनमस्ति रागरहितं साम्राज्यमाप्तोऽद्य यः ।। ४ ।।

अन्वयः—इयम् पुण्या मतिः यस्य कुटुम्बिनी । परम् ध्यानम् यस्य भोजनम् । तद् एव च भोगः । दिशः यत्पट्टवस्त्रं विदितम् । अद्य भूपालावलिभाललग्नमुकुटप्रोद्यल्ललामार्चिषा यन्नीराजनम् । रागरहितं साम्राज्यं यः आप्तः अस्ति ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—यह पवित्र मति जिसकी स्त्री है। केवल ध्यान करना जिनका भोजन है। और वही सुख भोग है। सब दिशाएँ जिस का सूक्ष्म वस्त्र प्रसिद्ध हो रहीं हैं। आज राजा लोगों के माथे में लगे हुए मुकुट से निकली हुई सुन्दर ज्योति से जिसकी आरती होती है। इस प्रकार के राग-रहित चक्रवर्तित्त्व को जो प्राप्त हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस महात्मा की पुण्य में तत्पर बुद्धि ही मानो अर्द्धाङ्गिनी है, ईश्वर का ध्यान करना ही जिनका भोजन और सुख भोग है, सब दिशाएँ ही जिनका महीन उत्तम वस्त्र हो रहीं हैं और आज जिनकी आरती राजा लोगों के माथे में लगे मुकुट मणि की चमक से हो रही है अर्थात् बड़े बड़े राजा लोग जिनके चरणों पर अपना मस्तक धरते हैं उस अर्थात् उक्त यतीन्द्र जी का राग-रहित राज्य है ॥ ४ ॥

कामक्रोधविमोहिताः सुतधनस्त्रीचिन्तनालोलुपाः
स्वप्नेऽपीश्वरनामगन्धरहिताः व्यग्राः परग्रासिनः ।
यत्सान्निध्यमुपेतमात्रमनुजाः[१] सौख्येन सम्बिभ्रते
विश्वेशानपदारविन्दयुगलध्यानस्पृहावन् मनः ।। ५ ।।

अन्वयः—कामक्रोधविमोहिताः सुतधनस्त्रीचिन्तनालोलुपाः । स्वप्ने अपि ईश्वर नाम गन्ध रहिताः । व्यग्राः परग्रासिनः यत् सान्निध्यम् उपेतमात्रमनुजाः । सौख्येन विश्वेशानपदारविन्द-युगलध्यानस्पृहावत् मनः सम्बिभ्रते ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—काम, क्रोध से मोहित, पुत्र, धन, स्त्री—इन्हीं की चिन्ता में आसक्त। सपने में भी ईश्वर के नाम की गन्ध से दूर। घबराए हुए दूसरे का (सर्वस्व) ग्रास कर जाने वाले भी जिन के समीप आने ही से मनुष्य लोग। सुख से विश्वेश्वर के चरण कमलों के ध्यान करने की इच्छा वाले मन को धारण करते हैं ।। ५ ।।

भावार्थ—काम और क्रोध ने जिनको अपने वश में कर लिया है। स्त्री, पुत्र और धन की चिन्ता में मग्न और इसी से सपने में भी ईश्वर के नाम की गन्ध से रहित अर्थात् भूल से भी जिनको ईश्वर का नाम स्मरण नहीं आता और घबराए हुए दूसरों का सबँस छीन लेने वाले भी मनुष्य यतीन्द्र महाराज के पास आने ही से अर्थात् परिश्रम के विना ही अपने मन को ईश्वर के चरण-कमलों के ध्यान करने की इच्छा करने वाला कर लेते हैं ।। ५ ।।

---

१. नित्यसापेक्षत्वात्समासः ।

लीलामात्रविनिर्मिताऽमितनवब्रह्माण्डमालोल्लसल्-
लोकेशानमराललास्यविधये यन्मानसं मानसम् ।
तस्येदं चरितं जनोपकृतये श्रीभास्करानन्दविद्-
योगीन्द्रस्य निरूप्यते श्रुतिमितं यच्चापि सन्दृश्यते ।। ६ ।।

अन्वयः—यन् मानसम् लीलामात्रविनिर्मितामितनव-ब्रह्माण्डमालोल्लसल्लोकेशानमराललास्यविधये मानसम् । तस्य श्रीभास्करानन्दविद्वद्योगीन्द्रस्य इदम् यत् श्रुतिम् इतम् । अपि च सन्दृश्यते । (तत्) चरितम् जनोपकृतये निरूप्यते ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—जिन का मन, क्रीड़ा मात्र से रचे गए हैं, अपरिमित नये ब्रह्माण्ड उन में प्रकाशमान हैं, जो परमात्मा-रूप हंस उसके खेलने के लिए मानसरोवर सा है। उन श्री भास्करानन्द विद्वान् योगीन्द्र का यह जो कान तक पहुँचा है। और देखा जाता है। वह चरित लोगों के उपकार लिए प्रकाश किया जाता है ।। ६ ।।

भावार्थ—जिन योगीन्द्र महाराज का मन रूपी मानसरोवर, क्रीड़ा मात्र से असंख्य बड़े से बड़े नये नये ब्रह्माण्ड रूपी अण्डा के उत्पन्न करने वाले हंस रूप परमेश्वर की क्रीड़ा का स्थान है अर्थात् जिनके चित्त में सदा विराजमान रहते हैं, उन यतीन्द्र श्री १०८ भास्करानन्द जी का जीवन चरित जो कुछ सुना गया है और देखा जाता है वह सबके कल्याण के लिए लिखा जा रहा है ।। ६ ।।

इदं भुवनमङ्गलं दुरितनाशनायाप्यलं
नृणां निखिलसम्पदामपि निधानभूतं परम् ।
श्रुतं स्मृतमथामृतं हृदि समादराद् भावितं
चरित्रमखिलक्षमाविदितमस्तु सन्तुष्टये ॥ ७ ॥

अन्वयः—इदम् चरित्रम् श्रुतम् अथ स्मृतम् । भुवन-मङ्गलम् । दुरितनाशनाय अपि अलम् । नृणाम् निखिलसम्पदाम् अपि परम् निधानभूतम् । हृदि समादराद् भावितम् अमृतम् । अखिलक्षमाविदितम् सन्तुष्टये अस्तु ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—यह चरित्र सुना जाय अथवा स्मरण किया जाय (तो) । सब का मङ्गल करता है । पाप के नाश करने के लिये भी समर्थ है । मनुष्यों की सब सम्पत्ति का मुख्य स्थान है । हृदय में आदर से ध्यान किया जाय तो अमृत है । (यह) सब पृथिवी में प्रसिद्ध होकर सबके सन्तोष के लिए हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—योगीन्द्र महाराज का चरित्र सुना जाय अथवा स्मरण किया जाय—वह सबका कल्याण करता है, सब पापों को दूर करता है और मनुष्यों को सब प्रकार की सम्पत्ति देता है । और बड़े आदर से हृदय में विचारा जाय तो अमृत है अर्थात् मोक्ष को भी देता है । ऐसा यह चरित्र सब लोगों के सन्तोष के लिए सब जगह प्रसिद्ध हो ॥ ७ ॥

रिरक्षिषथ चेत् सुखं मनसिजादितः स्तेनतः
सुदुर्गमभवाटवीमपि तरीतुमिच्छा यदि ।
अवश्यमिदमस्त्रवन् निविडवर्मवच्चासकृद्-
दृढीकृतमुपस्कृतं मनसि सज्जना नह्यत ।। ८ ।।

अन्वयः—(हे) सज्जनाः (यूयम्) यदि मनसिजादितः स्तेनतः। सुखं रिरक्षिषथ। चेत् सुदुर्गमभवाटवीम् तरीतुम् अपि इच्छा। (तर्हि) अवश्यम् इदम् अस्त्रवत् निविडवर्म्मवत् च। असकृद्दृढीकृतम् उपस्कृतम् मनसि नह्यत ।। ८ ।।

अन्वयार्थ—हे सज्जनो ! (तुम लोग) यदि कामदेव आदि चोरों से। सुख की रक्षा किया चाहते हो। (और) यदि संसाररूपी वन के पार जाने की इच्छा हो। तो अवश्य इसे अस्त्रों के समान अच्छे कवच के समान। अनेक वार दृढ़ कर और अलंकृत करके मन में धारण करो ।। ८ ।।

भावार्थ—हे सज्जन लोगो ! आप लोग यदि काम, क्रोध आदि चोरों से अपने सुख की रक्षा किया चाहते हो और यदि दुर्गम संसाररूपी वन के पार जाने की अर्थात् मुक्त होने की इच्छा रखते हो तो अवश्य इस चरित्र को शास्त्र और कवच के समान दृढ़ कर के और सजाय करके मन में इसे भली भाँति ध्यान करो (धारण करो) ।। ८ ।।

मन्त्रग्रामाश्रयाणां सविधिकृतमखैस्तोष्यमाणामराणां
विद्यासत्कीर्त्तिकान्त्या धवलितजगतां धर्षितेन्दुप्रभाणाम् ।
वासस्थानं मुनीनां स्मृतिषु निगदिताचारविश्रामभूमि-
र्देशो यः श्लाघनीयो जगति विजयते कान्यकुब्जाभिधानः ।।९।।

अन्वयः—यः मन्त्रग्रामाश्रयाणाम् । सविधिकृतमखैः तोष्यमाणामराणाम् । विद्यासत्कीर्त्तिकान्त्या धवलितजगताम् । धर्षितेन्दुप्रभाणाम् मुनीनाम् वासस्थानम् । स्मृतिषु निगदिताचारविश्रामभूमिः । श्लाघनीयः कान्यकुब्जाभिधानः देशः । जगति विजयते ।। ९ ।।

अन्वयार्थ—जो मंत्रों के समूह के आधार। विधि से किए गए यज्ञों से देवताओं के सन्तुष्ट करने वाले। विद्या और उत्तम यश की चमक से जगत को उज्वल करने वाले। और चन्द्रमा की चांदनी का तिरस्कार करने वाले मुनियों का वासस्थान। स्मृतियों में कहे गए आचारों का विश्राम स्थान। प्रशंसा के योग्य कान्यकुब्ज नाम का देश जगत् में सबसे उत्तम है ।।

भावार्थ—जो देश ऋक्, यजुः, साम, अथर्व के जानने वाले, बड़ी विधि से यज्ञ कर देवताओं के प्रसन्न करने वाले और जिन्होंने अपनी विद्या और यश की चमक से जगत् को उज्वल कर दिया है, चन्द्रमा की चांदनी को मलिन दर्शा दिया है—ऐसे मुनियों के रहने का स्थान है और स्मृतियों में कहे गए आचार-विचारों के टिकने की जगह है, ऐसी प्रशंसा योग्य यह कान्यकुब्ज देश जगत् में सब से उत्तम है ।। ९ ।।

तस्मिन् कान्हपुराख्यपत्तनमहीभूषाभवद्भोगवन्-
मैथेलालपुरेति शब्दितपुरं विद्याचणं राजति।
मिश्रस्तत्र धरासुरो हिमकरस्याप्तः कुले सम्भवं
मिश्रीलाल इतीरितो जलधिजानाथाङ्घ्रिपद्मप्रियः ।। १० ।।

अन्वयः—तस्मिन् कान्हपुराख्यपत्तनमहीभूषाभवद्भोगवत् । विद्याचणम् मैथेलालपुर इति शब्दितपुरम् राजति । तत्र हिमकरस्य कुले धरासुरः मिश्रः । जलधिजानाथाङ्घ्रिपद्मप्रियः । मिश्रीलाल इति ईरितः सम्भवम् आप्तः ।। १० ।।

अन्वयार्थ—उस देश में कान्हपुर नाम नगर की पृथ्वी का भूषणभूत सुखशाली। विद्या से विख्यात मैथेलालपुर इस नाम से कहा गया पुर विराजमान है। वहां श्री हिमकर जी के कुल में ब्राह्मण मिश्र, लक्ष्मीनाथ (भगवान्) के चरण कमलों में प्रीति करने वाले। मिश्रीलाल इन शब्दों से प्रसिद्ध ने जन्म लिया ।। १० ।।

भावार्थ—उस कान्यकुब्ज देश में कानपुर जिला की पृथिवी का भूषण स्वरूप सुख का स्थान और अपनी विद्या से विख्यात मैथेलालपुर नाम का गाँव है। उस गाँव में हिमकर जी के कुल में लक्ष्मीनाथ भगवान के चरण कमलों के प्यार करने वाले ब्राह्मण मिश्र श्रीमिश्रीलाल जी ने जन्म लिया ।। १० ।।

तस्मादजायत सुधीर्मतिरामनामा
जन्मान्तरीयसुहृदं विरतिं दधानः ।
यः साम्प्रतं नृपसहस्त्रकिरीटरत्नच्छाया-
समीडितपदोऽस्ति दिगम्बरोऽपि ।। ११ ।।

अन्वयः—तस्मात् जन्मान्तरीयसुहृदम् विरतिम् दधानः । सुधीः मतिरामनामा अजायत । यः साम्प्रतम् दिगम्बरः अपि । नृपसहस्त्रकिरीटरत्नच्छायासमीडितपदः अस्ति ।। ११ ।।

अन्वयार्थ—उस (मिश्रीलाल जी) से दूसरे जन्म के मित्र वैराग्य को धारण किए हुए । बुद्धिमान् श्रीमतिराम जी उत्पन्न हुए । जो इस समय दिगम्बर हैं तो भी हजारों राजाओं की मुकुटमणि की छाया से सेवित-चरण हैं ।। ११ ।।

भावार्थ—मिश्र श्रीमिश्रीलाल जी से द्वितीय जन्म के मित्र वैराग्य को हृदय में धारण किए हुए अत्यन्त बुद्धिमान श्रीमतिराम जी उत्पन्न हुए । जो इस समय दिगम्बर हैं । हजारों राजा और अपने मुकुटमणि की छाया से जिनके चरणों की सेवा किया करते हैं ।। ११ ।।

गर्भाष्टमं वत्सरमाश्रितस्य
जातं व्रतादेशविधानमस्य ।
अध्येतुमारब्ध च तत्परस्ताद्
दाक्षीसुतव्याकरणं पुरस्तात् ।। १२ ।।

अन्वयः—गर्भाष्टमम् वत्सरम् आश्रितस्य अस्य । व्रतादेश-विधानम् जातम् । तत् परस्तात् पुरस्तात् । दाक्षीसुतव्याकरणम् अध्येतुम् आरब्ध च ।। १२ ।।

अन्वयार्थ—गर्भ अवस्था से आठवे वर्ष को पहुंचे (तव) इस (महाराज) का यज्ञोपवीत हुआ। उसके उपरान्त पहिले। पाणिनि के व्याकरण का पढ़ना आरम्भ किया ।। १२ ।।

भावार्थ—गर्भ समय से आठवें वर्ष में उक्त महात्मा जी का विधिवत् यज्ञोपवीत हुआ उस के उपरान्त महात्मा जी ने पहिले पाणिनीय व्याकरण का पढ़ना आरम्भ किया ।। १२ ।।

उद्वाहो विधिवद् बभूव विदुषस्तस्यास्य संवत्सरे
प्राप्ते द्वादशकेऽथ सप्तदशके वर्षे मुनेः पाणिनेः ।
शास्त्रं वार्तिकशेषभाष्यसहितं सम्यक् समाप्याखिलं
विद्याकीर्त्तिभृतां सदःसु गणितो जातो महोदारधीः ।। १३ ।।

अन्वयः—तस्य विदुषः उद्वाहः । द्वादशके संवत्सरे प्राप्ते विधिवद् बभूव । अथ महोदारधीः सप्तदशके वर्षे वार्त्तिकशेष-भाष्यसहितम् । मुनेः पाणिनेः अखिलं शास्त्रम् सम्यक् समाप्य । विद्या कीर्त्तिभृतां सदःसु गणितः जातः ।। १३ ।।

अन्वयार्थ—उस विद्वान् का विवाह । वारहवें वर्ष के प्राप्त होने पर विधिवत् हुआ । बाद में उस अतिउत्तम बुद्धि वाले ने सत्रहवें वर्ष में वार्तिक और शेष जी के भाष्य सहित । मुनीश्वर पाणिनि जी के सम्पूर्ण शास्त्र को अच्छे प्रकार से पढ़कर समाप्त किया । तब विद्या-सम्बन्धी कीर्ति वालों की सभा में गिने जाने लगे ।। १३ ।।

भावार्थ—उक्त विद्वान् का विवाह बारहवें वर्ष में शास्त्रविधि से हुआ । उसके पश्चात् अति उत्तम बुद्धि वाले उस विद्वान् ने सत्रह वर्ष की अवस्था में भाष्यान्त व्याकरण भली भांति पढ़ लिया और तब विद्या-सम्बन्धी कीर्त्ति वाले बड़े-बड़े विद्वानों की सभा में गिने जाने लगे ।। १३ ।।

अष्टादशे चास्य बभूव
सूनुर्वर्षे द्वितीयाश्रमधारणस्य ।
फलं विलोक्यायमिमं तदानीं
गृहाद् विनिर्गन्तुमना बभूव ।। १४ ।।

अन्वयः—अष्टादशे च वर्षे अस्य सूनुः बभूव । तदानीम् अयम् इमम् (पुत्रम्) । द्वितीयाश्रमधारणस्य फलम् विलोक्य । गृहाद् विनिर्गन्तुमनाः बभूव ।। १४ ।।

शब्दार्थ—अठारहवें वर्ष में इस (महात्मा) के पुत्र उत्पन्न हुआ । तब इस (महात्मा) ने इसे (पुत्र को) दूसरे आश्रम (गृहस्थाश्रम) की फल प्राप्ति विचार कर । घर से बाहर जाने को इच्छा की ।। १४ ।।

भावार्थ—अठारहवें वर्ष की अवस्था में महाराज को पुत्र उत्पन्न हुआ । उस समय महात्माजी ने गृहस्थाश्रम के ग्रहण करने का फल पुत्र हो चुका है यह विचार कर इस गृहस्थी के छोड़ने की इच्छा की ।। १४ ।।

वैराग्ये हि सति प्रबोधमहिते पुत्रोद्भवाद्युत्सवा-
स्तेते नैव विमोहयन्ति कृतिनं सच्चित्प्रमोदात्मकम् ।
सावित्रांशुमिलन्नवारुणरुचिव्यासङ्गजाग्रज्जगत्
तामिस्रस्य महान्त्यहो विलसितान्यारुन्धते वा किमु ॥ १५ ॥

अन्वयः—हि प्रबोधमहिते वैराग्ये सति ते ते पुत्रोद्भवाद्यु-त्सवाः । सत्-चित्-प्रमोदात्मकम् कृतिनम् नैव विमोहयन्ति । अहो किमु वा तामिस्रस्य महान्ति विलसितानि । सावित्रांशुमिल-न्नवारुणरुचिव्यासङ्गजाग्रज्जगत् आरुन्धते (नेति शेषः) ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ—क्योंकि ज्ञान से पूजित वैराग्य के होने पर वे पुत्र के जन्म आदि उत्सव । सच्चिदानन्द ज्ञानरूप पुण्यात्मा को नहीं मोह सकते । क्यों जी ! क्या रात का बड़ा भी अन्धेरा । सूर्य की किरणों से मिली हुई नई-नई अरुण की किरण के लगने से जागते हुए जगत् को ढांक सकता है ? (कभी नहीं) ॥ १५ ॥

भावार्थ—क्योंकि ज्ञान युक्त उत्तम वैराग्य के होने पर पुत्र का जन्म, पुत्र का विवाह इत्यादि उत्सव सच्चिदानन्द-स्वरूप विद्वान् पुण्यात्माके योग्य पुरुष को मोहित नहीं कर सकते । क्यों जी ! क्या रात का बड़ा भी अन्धेरा सूर्य की किरण से मिली हुई नई-नई अरुण की किरणों से प्रकाशमान जगत् को कभी ढांक सकता है अर्थात् प्रभात समय हो जाने पर क्या रात का अन्धेरा कहीं रह जाता है ? कहीं नहीं ॥ १५ ॥

प्रतिदिनमुपचीयमानशोभासुतधनयौवनजाद्यनेकभावम् ।
नरकपतनहेतुमेव सर्वं समकलयत् स समिद्धबोधरूपः ।। १६ ।।

अन्वयः——समिद्धबोधरूपः सः प्रतिदिनम् । उपचीयमान-शोभासुतधनयौवनजाद्यनेकभावम् । सर्वम् एव नरकपतनहेतुम् समकलयत् ।। १६ ।।

अन्वयार्थ—उज्वल ज्ञान·स्वरूप उस (महात्मा) ने प्रतिदिन । बढ़ती हुई शोभा, सुत, धन और जवानी के अनेक विकार । इन सभी को नरक में गिरने का कारण समझा ।। १६ ।।

भावार्थ—उत्तम ज्ञान वाले उस महात्मा ने दिन-दिन बढ़ती हुई सब शोभा को, पुत्र, धन और जवानी में चित्त में उत्पन्न होते हुए अनेक विकार—इन सभी को नरक में ले जाने वाला ही समझा ।। १६ ।।

जगति भवति वृत्तिः कीदृशी वार्द्धकेऽपि
ज्वलिततरुणभावेऽप्यस्य कीदृक् बभूव ।
अवहितमनसेदं भाव्यते चेद् बुधानां
स्फुरति प्रथमजन्मोद्भूतपुण्यं निदानम् ।। १७ ।।

अन्वयः—जगति वार्द्धके अपि कीदृशी वृत्तिः भवति । ज्वलिततरुणभावे अपि अस्य कीदृग् बभूव । इदम् अवहितमनसा विभाव्यते चेत् । बुधानाम् (मनसि) प्रथमजन्मोद्भूतपुण्यम् निदानम् स्फुरति ।। १७ ।।

अन्वयार्थ—संसार में बुढ़ापे में कैसी वृत्ति होती है । नई जवानी में भी इस (महात्मा) की कैसी (वृत्ति) हुई । यह सावधान मन से जो विचारा जाय तो । पण्डितों के (मन में) पूर्वजन्मकृत पुण्य ही इसका कारण मालूम पड़ता है ।। १७ ।।

भावार्थ—संसार में बुढ़ापे में भी मनुष्यों के चित्त की दशा कैसी होती है अर्थात् पुत्र, पोते आदि का व्याह देख लेते तो अच्छा होता, इत्यादि तृष्णा बढ़ती जाती है । पर इस महात्मा की चित्त की वृत्ति चढ़ती जवानी में भी कैसी दृढ़ वैराग्य वाली हुई यह बात सावधान मन से विचारी जाय तो पण्डितों के मन में यही उदय होगा कि उक्त महात्मा के पूर्व जन्म के पुण्य का फल उदय हो रहा है ।। १७ ।।

२

इह कलयति को न कामिनीनां
कुटिलकटाक्षनिपातमाप्य सौख्यम् ।
हृदयमनुबबन्ध कस्य नो वा
सुतमुखवीक्षणमस्य काकली वा ॥ १८ ॥

अन्वयः—इह कः कामिनीनाम् कुटिलकटाक्षनिपातम् आप्य । सौख्यम् न कलयति । सुतमुखवीक्षणम् वा अस्य काकली वा । कस्य हृदयम् नो अनुबबन्ध (अपितु सर्वस्य अनुबबन्ध इति शेषः) । ॥ १८ ॥

अन्वयार्थ—यहाँ कौन सुन्दर स्त्रियों के कुटिल कटाक्षों के सम्बन्धको पाकर । सुख नहीं मानता है । (और) पुत्र के मुख का दर्शन अथवा इस के मीठे-मीठे वचन । किसके हृदय को (स्नेह पाश से) नहीं बाँधते । ? अर्थात् सब के हृदय को स्नेह पाश में बाँध लेते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस संसार में कौन ऐसा मनुष्य है जो सुन्दर स्त्रियों के कटाक्षों को अपने ऊपर आते देख कर सुखी नहीं होता । पुत्र के मुख का दर्शन और पुत्र के मीठे मनोहर शब्द किसके चित्त को स्नेह रूपी जाल में नहीं बाँध रखते । अर्थात् सब के चित्त को बाँध रखते हैं ॥

विलसति किल तावदेव लोके
धनवनितादि विरागबद्धचर्चा ।
विकसति नहि यावदङ्गनानां
हठ-दवितेतरभावनो विलासः ।। १९ ।।

अन्वयः—लोके तावत् एव धनवनितादिविरागबद्धचर्च्चा विलसति किल । यावत् हठदवितेतरभावनः अङ्गनानाम् विलासः नहि विकसति ।। १९ ।।

अन्वयार्थ—लोक में तभी तक धन ओर स्त्री आदि से जो वैराग्य उस से युक्त विचार ठीक रहता है । जब तक हठ से दूसरे विचारों का दूर करने वाला स्त्रियों का हाव भाव (चित्त में) नहीं उदय होता है ।। १९ ।।

भावार्थ—लोगों के चित्त में तभी तक धन और स्त्री पुत्र आदि की ओर से वैराग्य का विचार ठीक-ठीक रहता है । जब तक बल से दूसरे विचारों का दूर करने वाला सुन्दर स्त्रियों का हाव-भाव-कटाक्ष नर के चित्त में उदय नहीं होता ॥ १९ ॥

अपि भवतु विशेषशास्त्रदृष्टि-
रुपनिषदः परिशीलिताश्च सन्तु ।
परिषदि कथनाय सर्वमेतद्
विषयविरक्तिपदं तु दूरसंस्थम् ।। २० ।।

अन्वय—विशेषशास्त्रदृष्टिः अपि भवतु । उपनिषदः च परिशीलिताः सन्तु । एतद् सर्वम् परिषदि कथनाय । विषय-विरक्तिपदम् तु दूरसंस्थम् ।। २० ।।

अन्वयार्थ—शास्त्र का विशेष बोध भी हो । और उपनिषदें भी भली भाँति अभ्यास की गई हों । यह सब सभा में कहने के लिए हैं । विषयों से वैराग्य रूप स्थान तो दूर स्थित है ।। २० ।।

भावार्थ—शास्त्रों का विशेष ज्ञान हो । और उपनिषदों का भी भली भांति अभ्यास किया हो । परन्तु उक्त ज्ञान और अभ्यास केवल सभा में पण्डिताई प्रगट करने के लिये देखा जाता है । और संसार के विषयों से वैराग्य तो बहुत दूर है ।। २० ।।

धनमपि मनसोऽपकर्षणं कुरुते-
ऽदस्तु न न प्रसिध्यति ।
अपि कणकक्कृते त्यजेदसून् इति
लोके किमु नो निभालितम् ।। २१ ।।

अन्वयः——धनम् अपि मनसः अपकर्षणम् कुरुते । अदः तु न प्रसिध्यति (इति) न (किन्तु) प्रसिध्यत्येव । लोके कणकक्कृते अपि असून् त्यजेत् । इति किमु नो निभालितम् ।। २१ ।।

अन्वयार्थ—धन भी मन का आकर्षण करता है। यह नहीं प्रसिद्ध है (यह बात) नहीं है (अर्थात् प्रसिद्ध है)। संसार में एक कण के लिए भी प्राण छोड़ दे। ऐसा क्या नही देखा गया है? (अर्थात् देखा गया है) ।। २१ ।।

भावार्थ—धन भी मन को संसार की ओर खींचता है यह बात न प्रसिद्ध हो यह नहीं है अर्थात् इसे सब लोग जानते हैं। क्योंकि संसार में एक तुच्छ वस्तु के लिये प्राण छोड़ दे सकते हैं ऐसे लोग क्या नहीं देखे गए हैं? अर्थात् बहुत से देखे जा सकते हैं ।। २१ ।।

इति सुविदितमस्ति सन्मतीनां
परमिदमस्य तु यौवनेऽपि पश्य ।
अभवदतितरामनन्यलभ्यो
धनयुवतीसुतमानतो विरागः ।। २२ ।।

अन्वयः—इति इदम् सन्मतीनाम् सुविदितम् अस्ति । परम् तु अस्य यौवने अपि । धनयुवतीसुतमानतः अनन्यलभ्यः विरागः अतितराम् अभवत् (इति) पश्य ।। २२ ।।

अन्वयार्थ—यह सब बुद्धिमान लोगों को भली-भाँति मालूम है। लेकिन देखो इस (महात्मा) को जवानी में भी। धन, स्त्री, पुत्र, और प्रतिष्ठा से स्वभाव से ही। अत्यन्त वैराग्य हुआ ।। २२ ।।

भावार्थ—उक्त सब बातें बुद्धिमान लोगों को मालूम हैं लेकिन देखो इस महात्मा को नई जवानी में ही स्त्री, पुत्र, धन और प्रतिष्ठा—इन सब वस्तुओं के प्रति स्वभाव ही से अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ ।। २२ ।।

प्रथमजनुषि नित्यकर्मजातं
समयविशेषनिबन्धनं च यद् यद् ।
अविहितपरिवर्जनं च शश्वद्
विहितमभूदतियत्नतोऽस्य पुंसः ।। २३ ।।

अन्वयः—अस्य पुंसः प्रथमजनुषि नित्यकर्मजातम् । यत् समयविशेषनिबन्धनम् । यत् च अविहितपरिवर्जनम् (तत् सर्वं कर्म) । अतियत्नतः शश्वत् विहितम् अभूत् ।। २३ ।।

अन्वयार्थ—इस (महात्मा) पुरुष के पूर्व जन्म में नित्य कर्मों के समूह । समय-समय के कर्म । और निषिद्ध कर्मों के त्याग । (ये सब कर्म) बड़े यत्न से सदा किए गए थे ।। २३ ।।

भावार्थ—इस महात्मा पुरुष ने पूर्व जन्म में सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य कर्मों को, ग्रहण स्नान आदि नैमित्तिक कर्मों को और हिंसा आदि निषिद्ध कर्मों के त्याग को बड़े यत्न से सदा किया है अर्थात् धर्मशास्त्रों की आज्ञा का पालन पूर्णरूप से किया है ।। २३ ।।

कृतवानयमन्यजन्मसु चिरमीशानपदाम्बुजार्चनम् ।
कथमेकपदेऽन्यथा भवेद् विषयेष्वामिषधीकृता घृणा ॥ २४ ॥

अन्वयः—अयम् अन्यजन्मसु चिरमीशानपदाम्बुजार्चनम् कृतवान् । अन्यथा कथम् विषयेषु एकपदे । आमिषधीकृता घृणा भवेत् ॥ २४ ॥

अन्वयार्थ—इस (महात्मा) ने पूर्व जन्म में बहुत काल तक महादेव जी के चरण कमल की पूजा की है। नहीं तो क्यों विषयों में एक बारगी। अभक्ष्य माँस के समान घिन (घृणा) उत्पन्न होती ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस महात्मा ने पूर्व जन्म में बहुत काल तक महादेव जी के चरण कमलों की सेवा की है नहीं तो क्यों एक बारगी विषयों पर अर्थात् कर्ण, नेत्र आदि इन्द्रियों को गीत, सुन्दर रूप आदि वस्तुओं के प्रति—जैसे बुरे माँस पर घिन उत्पन्न होती है वैसी घिन इनके मन से उत्पन्न होती ॥ २४ ॥

चिरकालमुपासनां　　विना
जगदीशस्य　　पदारविन्दयोः ।
घटते　च　न　जात्त्वधिक्षिति
क्षितिभृन्मण्डलमण्डिताङ्घ्रिता　　॥ २५ ॥

अन्वयः—चिरकालम् जगदीशस्य पदारविन्दयोः । उपासनाम् विना अधिक्षिति । क्षितिभृन्मण्डलमण्डिताङ्घ्रिता च जातु न घटते ॥ २५ ॥

अन्वयार्थ—बहुत काल तक परमेश्वर के चरण कमलों की । सेवा के विना पृथ्वी पर । राजा लोगों के मण्डल से चरणों की शोभा का होना भी कदापि नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

भावार्थ—बहुत काल तक परमेश्वर के चरण कमलों की सेवा के विना इस पृथ्वी पर राजा लोगों के समूह से यतीन्द्र जी के चरणों की शोभा (सेवा) का होना भी कदापि नहीं हो सकता । अर्थात् स्वामी जी ने पूर्व जन्म में बहुत काल तक ईश्वर सेवा की थी उसी का यह फल है जो राजा लोग स्वामी जी के चरणों की सेवा करते हैं ॥ २५ ॥

इह चेदवदत् पतञ्जलिर्दृढवैराग्य-फलान्यमून्यपि ।
विवदामि न तेन यत् स्वयं परमं कारणमीशमाह सः ।। २६ ।।

अन्वयः—इह पतञ्जलिः अमून्यपि । दृढवैराग्यफलानि अवदत् चेत् । तेन न विवदामि । यत् स्वयम् सः ईशम् परमम् कारणम् आह ।। २६ ।।

अन्वयार्थ—इस (विषय) में पतञ्जलि ऋषि ने उन सभी को भी । दृढ़ वैराग्य का फल कहा है तो भी । उनके साथ विवाद नहीं करते । क्योंकि वह आप भी परमेश्वर को सब का परम कारण कहते हैं ।। २६ ।।

भावार्थ— इस विषय में योगशास्त्र के आचार्य पतञ्जलि भगवान ने "अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्" इत्यादि सूत्रों में यद्यपि कहा है कि दृढ़ वैराग्य के होने पर ये सब उक्त ऐश्वर्य आदि फल आप ही प्राप्त होते तथापि उनके साथ हम विवाद नहीं करते—क्योंकि उन्होंने आप ही "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः"—इस सूत्र से सबका मुख्य कारण ईश्वर को ही माना है। अर्थात् विना ईश्वर की कृपा वैराग्य भी नहीं हो सकता ।। २६ ।।

बह्वो भुवि सन्ति भावुका
बह्वः पण्डितमण्डलीवराः ।
सदसत्प्रविवेकधीगुणो
विदुषोऽस्यैव तु दृक्पथं गतः ।। २७ ।।

अन्वयः—भुवि बह्वः भावुकाः । बह्वः पण्डितमण्डलीवराः सन्ति । तु अस्य एव विदुषः । सदसत्प्रविवेकधीगुणः दृक्पथम् गतः ।। २७ ।।

अन्वयार्थ—पृथ्वी पर बहुत से अच्छे आचरण करने वाले । और बहुत से पण्डित मण्डली में श्रेष्ठ (लोग) हैं । परन्तु इसी विद्वान् में । सत् और असत् को अलगाने वाला बुद्धि-गुण देखने में आया है ।। २७ ।।

भावार्थ—संसार में बहुत से मङ्गल आचरण करने वाले लोग हैं और बहुत से पण्डितों की मण्डली में भी श्रेष्ठ मनुष्य हैं । परन्तु अच्छे और बुरे का विचार करने वाला, बुद्धि का गुण इसी महात्मा में देखा गया है ।। २७ ।।

स रहो निवसन् दिवानिशं मनसेदं परितो व्यभावयत् ।
निरधारयदाशु तत्त्वतो जगदज्ञानविलाससम्भवम् ।। २८ ।।

अन्वयः—स रहो निवसन् दिवानिशम् । मनसा इदम् परितः व्यभावयत् । जगत् तत्त्वतः अज्ञानविलाससम्भवम् (इति) आशु निरधारयत् ।। २८ ।।

अन्वयार्थ—उस (महात्मा) ने एकान्त में स्थित हो रात दिन । मन से इसे सब ओर से विचारा । (और) जगत् यथार्थ रूप से अज्ञान के फैलाव से उत्पन्न हुआ है—इसका शीघ्र निश्चय किया ।। २८ ।।

भावार्थ—उस महात्मा ने एकान्त में स्थित होकर रात दिन मन में इसे बहुत विचारा। और विचार कर अन्त को यह निश्चय किया कि यथार्थ में यह जगत् अज्ञान की लीला से उत्पन्न है ।। २८ ।।

यदि नित्यमिदं भवेज्जगत् पुरतो भूतिनिरोधभृत् कथम् ।
क्षितिरप्युभयीयुतैव किं न भवेत् सावयवत्त्वहेतुतः ।। २९ ।।

अन्वयः—यदि इदम् जगत् नित्यम् भवेत् (र्तांह) कथम् पुरतः भूतिनिरोधभृत् । क्षितिः अपि सावयवत्त्वहेतुतः । उभयीयुता एव किम् न भवेत् ।। २९ ।।

अन्वयार्थ—जो यह जगत् नित्य होता । (तो) क्यों प्रत्यक्ष ही उत्पत्ति और नाश का धारण करने वाला होता । (और) पृथिवी भी अवयव सहित है इस हेतु से दोनों से युक्त [अर्थात् उत्पत्ति और नाश वाली) ही क्यों न होवे ॥

भावार्थ—यतीन्द्र जी के विचार का यह स्वरूप है कि यदि यह संसार नित्य है तो प्रत्यक्ष ही उत्पत्ति और नाशवाला क्यों है । अर्थात् जीवों की वृक्षों की उत्पत्ति और नाश प्रत्यक्ष देखा जाता है इससे जगत् नित्य नहीं हो सकता । इस पर यह शङ्का होती है कि प्रत्यक्ष नाश और उत्पत्ति तो घट, पट आदि छोटे पदार्थों की देख पड़ती है । पृथिवी आदि महाभूतों की नहीं । अतः लघु पदार्थ तो चाहे अनित्य हों पर पृथ्वी आदि महाभूत-संज्ञक जगत् अनित्य नहीं है । यतीन्द्र जी के विचार में इस शङ्का का यह उत्तर है, कि जो जो अवयव वाले हैं सब उत्पत्ति और नाश वाले हैं—जैसे वृक्ष आदि । और यदि वृक्षों की उत्पत्ति और नाश प्रत्यक्ष है तो इसी युक्ति से महाभूत पृथिवी आदि भी अवयव वाले हैं । इनकी भी उत्पत्ति और नाश अवश्य होता है । इस प्रकार से जगत् अनित्य ठहरता है ॥ २९ ॥

अथ जातमिदं विभाव्यते सत उत्पत्तिमवैषि वाऽसतः ।
उभयस्य न चास्ति सम्भवश्चिति वा खस्रजि वापि बाधतः।।३०।।

अन्वयः—अथ इदम् जातम् विभाव्यते (तर्हि कथय)। सतः उत्पत्तिम् वा असतः (उत्पत्तिम्) अवैषि । चिति वा खस्रजि वापि बाधतः । उभयस्य सम्भवः न अस्ति ।। ३० ।।

अन्वयार्थ—यदि इस (जगत्) को उत्पन्न मानें (तो कहो)। सत् की उत्पत्ति को अथवा असत् की (उत्पत्ति) को मानते हो। पुरुष की और आकाश के फूलों की उत्पत्ति बाधित है इस कारण। सत् और असत् दोनों की उत्पत्ति नहीं बन सकती ।। ३० ।।

भावार्थः—यदि जगत् उत्पन्न होता है—ऐसा मानते हो तो कहिए यह जगत्, सत् अथवा असत् इन दोनों में कौन है ? यदि जगत् को सत् मानें और यदि जगत् अपनी उत्पत्ति के पहिले भी बना रहे तो सत् हो सकता है। तब वस्तु यदि अपनी उत्पत्ति के पहिले भी है तो उसकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? यदि सांख्यशास्त्र के अनुसार कहें कि सब कार्य अपने कारणों में सूक्ष्म रूप से लीन रहते हैं और क्रिया-विशेष से प्रगट हो जाते हैं—जैसे तिल में तेल पहिले से हैं पर तेली की क्रिया-विशेष से प्रगट हो जाता है कोई और नया उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार जगत् पहिले अपने कारणों में सूक्ष्म रूप से लीन था पीछे उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार जगत् सत् भी है और उत्पन्न भी होता है। सांख्यशास्त्र के अनुसार यह जो कथन है वह ठीक नहीं है, क्योंकि सांख्य के इस सिद्धान्त से यह नियम सिद्ध हुआ कि जितने सत् हैं वे उत्पन्न होते हैं। और सांख्यशास्त्र ही पुरुष को सत् मानता है पर उसकी उत्पत्ति नहीं मानता। वह स्वयं कहता है कि चित् अर्थात् पुरुष न किसी का कार्य है न कारण है। "न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः"। इस प्रकार अपने नियम को सांख्य ही ने भंग किया। इससे इस नियम द्वारा सत् जगत्

उत्पन्न होता है। ऐसा नहीं कह सकते। अब यदि यह कहें कि यह जगत् उत्पत्ति के पहिले न रहने से असत् है और कारण द्वारा उत्पन्न होता है— यह न्यायशास्त्र का मत है। क्योंकि न्याय मत में कार्य पहिले नहीं रहता अर्थात् असत् है। कारण-व्यापार के अनन्तर वह उत्पन्न होता है। और कारण उसी को कहते हैं जो कार्य का नियत पूर्ववर्ती हो। इस मत को भी सूक्ष्म दृष्टि से विचारें। कारण के पहिले न रहने से जो कार्यमात्र असत् ठहरें वे ही कारण-व्यापार के उपरान्त उत्पन्न होते हैं। इससे यह नियम सिद्ध हुआ कि असत् उत्पन्न होता है। इस नियम के अनुसार असत् आकाश पुष्प की उत्पत्ति होनी चाहिए और होती नहीं। अतः यहाँ उक्त नियम भंग हुआ। इससे न्याय मत भी उत्पत्ति के विषय में मानने के योग्य नहीं है॥ ३०॥

कथमस्ति च कारणार्थना यदि भूतेः पुरतोऽपि सद् भवेत्।
नहि भालविशालदृग्धरः स्वललाटे नयनं विधित्सति ॥ ३१ ॥

अन्वयः—यदि च भूतेः पुरतः अपि सद् भवेत्। (तर्हि)। कथम् कारणार्थना अस्ति। हि भालविशालदृग् हरः। स्वललाटे नयनम् न विधित्सति ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थ—यदि उत्पत्ति के पहिले भी सत् होता हो। (तो) क्यों (कार्यार्थी लोगों को) कारण की इच्छा होती। क्योंकि माथे में विशाल नेत्रधारी महादेव जी। अपने मस्तक में नेत्र बनाना नहीं चाहते॥ ३१॥

भावार्थ—यतीन्द्र जी का यह विचार है कि जो कार्य को सत् मानते हैं उनसे यह और पूछना है कि यदि कार्य उत्पत्ति के पहिले भी सत् है तो कार्य के चाहने वाले लोग कारण की इच्छा क्यों करते हैं। क्योंकि जो वस्तु पहिले से रहती है उसकी उत्पत्ति के लिये कोई भी जतन नहीं करता। देखो जिनके मस्तक में तीसरा बड़ा नेत्र है वह महादेवजी क्या मस्तक में नेत्र बनाने की इच्छा करते हैं अर्थात् कदापि नहीं। सत् को उत्पत्ति मानने वाले तो कारण की चाह करते हैं। इससे सत् की उत्पत्ति ठीक नहीं हो सकती॥

अथ चेत् सदपि प्रकाशितं
करणैः कर्त्तुमिहेहते जनः ।
नियमात् सति जन्म तेऽस्ति तत्
कथमाविर्भवनं न सद् भवेत् ।। ३२ ।।

अन्वयः—अथ इह जनः सत् अपि करणैः । प्रकाशितम् कर्त्तुम् ईहते चेत् । ते (मते) नियमात् सति जन्म अस्ति । तत् आविर्भवनम् कथम् सत् न भवेत् ।। ३२ ।।

अन्वयार्थ—यदि इसपर (कोई यह कहे कि) मनुष्य सत् को भी क्रिया द्वारा । प्रकाशित करने का जतन करता है तो । (उससे पूछना चाहिए कि) तुम्हारे (मत में) नियम से सत् का ही जन्म है । इस से वह प्रकाशित होना भी सत् क्यों न हो ।। ३२ ।।

भावार्थ—यहाँ पर यदि कोई कहे कि कार्य सत् है, अपनी उत्पत्ति के पहिले से रहता है परन्तु पहिले वह अपने कारण में सूक्ष्म रूप से लीन रहता है। इसी से उसको प्रकाशित (प्रगट) करने के लिए जतन किया जाता है—जैसे दही में घी पहिले से है पर तब भी उसे निकालने के लिए मथना पड़ता है। अतः यह भी कहना ठीक नहीं है—क्योंकि उसके मत में यह सिद्धान्त है कि "असत् उत्पन्न ही नहीं होता।" इसी से उस प्रकाश (प्रकट) क्रिया को भी सत् और पहिले ही से होना चाहिए। यदि वह कहे कि हाँ ! वह प्रकाश होना भी सूक्ष्म रूप से अपनी उत्पत्ति के पहिले से था पर उस प्रकाश को प्रकाशित (प्रकट) करने के लिए यह दूसरा जतन किया जाता है। तब भी शङ्का बनी रहेगी क्योंकि दूसरे प्रकाशित करने को भी सत् और अपनी उत्पत्ति के पहिले होना चाहिए। इससे उस दूसरे प्रकाश को प्रकाशित करने के लिए तीसरा जतन होना चाहिए। इसी प्रकार एक कार्य की उत्पत्ति में अनन्त प्रकाशन के अर्थात् प्रगट-क्रिया के प्रवेश करने से भी इसी प्रकार फिर शंका उत्पन्न होती जायगी, शंका शान्त न होगी और अनवस्था बनी रहेगी ।। ३२ ।।

असतोऽपि तथा विचारणे न च सुस्था भविता जनिक्रिया ।
वद दण्डमृदादितः कुतो घट उत्पद्यत एव नो पटः ।। ३३ ।।

अन्वयः—विचारणे च तथा असतः अपि । जनिक्रिया सुस्था न भविता । वद दण्डमृदादितः । घटः एव कुतः उत्पद्यते पटः नो (उत्पद्यते) ।। ३३ ।।

अन्वयार्थ—विचार करने में तो इसी प्रकार असत् को भी । उत्पत्ति ठीक नहीं होती । कहो दण्ड और मिट्टी आदि से । घड़ा ही क्यों उत्पन्न होता है पट क्यों नहीं (उत्पन्न होता) ।। ३३ ।।

भावार्थ—विचारने में तो जैसे सत् की उत्पत्ति ठीक नहीं है इसी प्रकार असत् की भी उत्पत्ति ठीक नहीं हो सकती क्योंकि यदि असत् ही उत्पन्न होता है तो कहिए कि डण्डा, मिट्टी, चाक आदि से घड़ा ही क्यों बनता है कपड़ा क्यों नहीं बन जाता । क्योंकि दण्ड, मिट्टी आदि कारणों में घड़ा, कपड़ा ये दोनों असत् हैं । जो कार्य को सत् मानते हैं । वे तो यह कह भी सकते हैं कि घड़ा अपने कारण मिट्टी में सूक्ष्म रूप से विद्यमान था, कुम्हार की क्रिया से उत्पन्न हो गया । असत् की उत्पत्ति मानने वाले तो इस बात को नहीं कह सकते क्योंकि मिट्टी में घट, पट आदि सब असत् हैं, अपनी उत्पत्ति के पहिले कोई भी न था ।। ३३ ।।

यदि शक्तिविशेष इष्यते स च कार्येण विशेष्यते न वा ।
प्रथमे त्वसता कथं तथा चरमे तेन कथं व्यवस्थितिः ।। ३४ ।।

अन्वयः——यदि शक्तिविशेषः इष्यते । स च कार्येण विशेष्यते वा न विशेष्यते । प्रथमे तु असता तथा कथम् । चरमे तेन व्यवस्थितिः कथम् ।। ३४ ।।

अन्वयार्थ—यदि (कारणों में) विशेष शक्ति रहती है—यह मानें (तो पहिले श्लोक का दोष दूर हुआ पर)। वह शक्ति कार्य के साथ सम्बन्ध रखती है, अथवा नहीं। पहिले में तो (यह दूषण है कि) असत् के साथ सम्बन्ध कैसे। अन्त पक्ष में तो उससे व्यवस्था कैसे (हो सकती है) ।। ३४ ।।

भावार्थ—यदि कहें कि कारणों में कोई विशेष शक्ति रहती है। इसी सबब से मिट्टी आदि कारणों से घड़ा ही उत्पन्न होता है और कपड़ा नहीं उत्पन्न हो जाता, तो यह भी बताइये कि उस विशेष शक्ति से कार्य का कुछ सम्बन्ध है ? या नहीं है ? यदि सम्बन्ध है—ऐसा कहें तो ठीक नहीं है। क्योंकि सम्बन्ध वह पदार्थ है जो अपने दोनों सम्बन्धियों के बिना हो नहीं सकता। इस कारण असत् कार्य के साथ सत् शक्ति का सम्बन्ध हो नहीं सकता। इस पर यदि कहें कि शक्ति से कार्य का कुछ सम्बन्ध नहीं तो वह भी ठीक नहीं क्योंकि जब कार्य से सम्बन्ध नहीं है तब मिट्टी से वस्त्र आदि भिन्न-भिन्न कार्य उत्पन्न हो जायँगे। मिट्टी से घड़ा, सूत से कपड़ा उत्पन्न होता है—यह व्यवस्था न रह जायगी ।। ३४ ।।

इति चिन्तितमेव सूरिभिः प्रथमाचार्यवरैरनेकधा ।
न कथञ्चन युक्तिसिद्धता जगदुत्पत्तिगताऽवतिष्ठते ।। ३५ ।।

अन्वयः——प्रथमाचार्यवरैः सूरिभिः इति अनेकधा चिन्तितम् एव । कथञ्चन जगदुत्पत्तिगता युक्तिसिद्धता न अवतिष्ठते ।।३५।।

अन्वयार्थ—पूर्व आचार्यों में श्रेष्ठ पण्डितों ने इसे अनेक प्रकार से विचारा है। किसी प्रकार जगत् की उत्पत्ति युक्ति-सिद्ध नहीं होती ।।३५।।

भावार्थ—इस बात को पहले आचार्यों ने बहुत विचारा है। अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। जगत् की उत्पत्ति युक्तिसिद्ध नहीं होती। क्योंकि जो जगत् की उत्पत्ति मानेगा वह कार्य को सत् वा असत् अवश्य मानेगा। यदि दोनों मतों को पृथक्-पृथक् विचार करके देखते हैं तो जगत् की उत्पत्ति में बहुत से दोष आते हैं। ठीक-ठीक उत्पत्ति नहीं बन सकती। केवल माया ही का विस्तार देख पड़ता है ।। ३५ ।।

कणभक्षमतं यदीक्ष्यते न विचारं सहते तदण्वपि ।
परमाणुमयं हि कारणं जगतो वक्ति न चास्य सम्भवः ।। ३६ ।।

अन्वयः—यदि कणभक्षमतम् ईक्ष्यते । तद् विचारम् अणु अपि न सहते । हि अयम् (कणादः) परमाणुं जगतः कारणम् वक्ति । अस्य च सम्भवः न ।। ३६ ।।

अन्वयार्थ—जो कणाद ऋषि के मत को देखते हैं (तो) । वह विचार को थोड़ा भी नहीं सह सकता । क्योंकि यह ऋषि परमाणु को जगत् का कारण कहता है । और यह हो नहीं सकता ।। ३६ ।।

भावार्थ—यदि युक्तिप्रधान कणाद ऋषि के वैशेषिक शास्त्र को देखते हैं तो उस शास्त्र की भी सृष्टि-विषयक विचार के साथ साथ संगति नहीं बैठ पाती । क्योंकि वैशेषिक मत में परमाणु जगत् का कारण माना गया है । और इस सिद्धान्त में ३९ वें श्लोक में कहा हुआ दोष बड़ा दोष है । इससे परमाणु से भी जगत् की उत्पत्ति ठीक नहीं है ।। ३६ ।।

रहितोऽवयवैः स इष्यते सति
योगे च तयोः शिवेच्छया ।
द्व्यणुकक्रमतो जगद् भवेदिति
काणादमतं व्यवस्थितम् ।। ३७ ।।

अन्वय—सः अवयवैः रहितः इष्यते । शिवेच्छया च तयोः योगे सति । द्व्यणुकक्रमतः जगद् भवेत् । इति काणादमतम् व्यवस्थितम् ।। ३७ ।।

अन्वयार्थ—वह (परमाणु) अवयवों से रहित माना गया है । शिवजी की इच्छा से दो परमाणुओं के योग होने से । द्व्यणुक होता है इसी क्रम से जगत् उत्पन्न होता है । यह कणाद ऋषि का मत स्थित है ।। ३७ ।।

भावार्थ—क्योंकि कणाद ऋषि के मत में स्थूल पृथिवी, जल, तेज, वायु–इन चार द्रव्यों के आदि कारण चार प्रकार के परमाणु हैं । ये परमाणु अवयव रहित हैं । अर्थात् इतने छोटे हैं कि इनके अवयव हो ही नहीं सकते । ईश्वर की इच्छा से ये परमाणु आपस में मिल जाते हैं । दो परमाणु के मिलने से द्व्यणुक होता है । और अधिकों के मिलने से त्रिसरेणु होता है । इसी क्रम से स्थूल पृथिवी आदि जगत् उत्पन्न होता है । यह कणाद ऋषि जी का मत है ।। ३७ ।।

परमत्र विचार्यतामिदं परमाणा-
वणुकान्तरस्य यत् मिलितम् ।
सकलाश्रयेऽस्ति किं
तदुतैकांशगतं समिष्यते ।। ३८ ।।

अन्वयः—परम् अत्र इदम् विचार्यताम् । परमाणौ अणु-कान्तरस्य यत् मिलितम् । तत् किम् सकलाश्रये अस्ति । उत एकांशगतम् समिष्यते ।। ३८ ।।

अन्वयार्थं—परन्तु यहाँ यह विचारना चाहिए (कि)। परमाणु के साथ दूसरे परमाणु का जो मेल है। वह क्या सर्वांश में है ?। अथवा एकांश में माना जाता है ? ।। ३८ ।।

भावार्थ—लेकिन कणाद जी के इस मत में यह विचारो कि एक पर-माणु के साथ दूसरे परमाणु का जो मिलना अर्थात् संयोग है वह क्या सर्वांश से संयोग है अथवा एक अंश से संयोग है—क्या माना जाता है ? वस्तुतः उनके मत के विचार करने के लिए यह पूछा जाता है सिद्धान्त में तो जितने संयोग हैं वे सब एकांश गत होते हैं। परमाणु में अंश नहीं है तो किस प्रकार का इनका संयोग हुआ—यही प्रश्न का अभिप्राय है ।। ३८ ।।

यदि पूर्वमुदीरितं मतं किमु
लीनं न परस्परं तयोः ।
अणुतां न विमोक्ष्यते जगत्
मनसेदं निपुणं निरीक्ष्यताम् ।। ३९ ।।

अन्वयः—यदि पूर्वम् उदीरितम् मतम् । किमु तयोः परस्परम् न लीनम् । (अवश्यं लीनं, तदा) जगत् अणुताम् न विमोक्ष्यते । मनसा इदम् निपुणम् निरीक्ष्यताम् ।। ३९ ।।

अन्वयार्थ—यदि पहिले कहा हुआ मत हो (तो) । क्यों वे दोनों (परमाणु) एक दूसरे में लीन नहीं हुए ? (अवश्यलीन होंगे) । (तब) जगत् अणुता को नहीं छोड़ सकता । मन से इस पक्षको खूब विचारो ।। ३९ ।।

भावार्थ—यदि उक्त दोनों पक्षों में पहिला पक्ष मान लिया जाय अर्थात् एक परमाणु का सर्वांश दूसरे परमाणु से संयोग होता है तो इससे पक्ष में एक परमाणु में दूसरा परमाणु अवश्य लीन हो जाना चाहिए । वह क्यों न लीन हुआ ? यदि लीन हो गया यह मानें तो परमाणुसंयोग से उत्पन्न जगत्, परमाणु से बड़ा न होना चाहिए । क्योंकि जितने संयोग हैं वे कोई भी सर्वांश से नहीं होते । जैसे दो ईटों का संयोग एक ओर से है और शेष भाग उसका संयुक्त नहीं है । इसी से इंटों के संयोग से इतनो बड़ी भीत हो जाती है । इसी प्रकार सूत्रों का भी संयोग आपस में एक ओर से है और शेष भाग बच रहा है । इसी कारण सूत्रों के संयोग से इतना लम्बा चौड़ा वस्त्र हो जाता है । परन्तु आपके मत में परमाणु निरवयव हैं । इस कारण उक्त इंट-सूत के संयोग के समान परमाणु का संयोग कह नहीं सकते । सर्वांश से संयोग मानना पड़ा । यद्यपि सर्वांश शब्द यहाँ परमाणु के विषय में नहीं कह सकते क्योंकि परमाणु अवयव रहित और अंश रहित हैं । पर सर्वांश—इस शब्द से इतना ही कहना चाहते हैं कि परमाणु संयोग से बचा नहीं रह सकता । तब एक दूसरे में अवश्य लीन हुआ—यह सिद्ध हुआ । अब परमाणु के संयोग से उत्पन्न जगत् बहुत बड़ा प्रत्यक्ष दीख पड़ता है । इससे उक्त मत ठीक नहीं है । इसे विद्वान् लोग विचारें ।। ३९ ।।

**अथ चेदपरं मतं वदेः क्व गता सांशविहीनतास्य ते ।
इयमेव च दोषभावनाऽवयवेष्वप्यणुता कृताऽऽव्रजेत् ।। ४० ।।**

अन्वयः—अथ अपरम् मतम् वदेः चेत् । ते अस्य सा अंशविहीनता क्व गता । अवयवेषु अपि अणुताकृता । इयम् एव दोषभावना आव्रजेत् ।। ४० ।।

अन्वयार्थ—यदि तुम दूसरा मत कहते हो तो । तुम्हारे (मत में) परमाणु का अवयव रहित होना कहाँ गया । परमाणु के अवयवों में भी (संयोग मानने से) छोटेपन से उत्पन्न । यही दोष आ पड़ेगा ॥ ४० ॥

भावार्थ—जो दूसरा पक्ष अर्थात् परमाणु के अवयवों में संयोग होता है यह माना जाय तो परमाणु के अवयव नहीं होते यह सिद्धान्त ही नष्ट हो जाता है वरन् परमाणु का सिद्ध होना ही कठिन दीखता है । तिस पर भी वही दोष अर्थात् परमाणु के अवयव जो दूसरे परमाणु के अवयव से मिलते हैं वे सर्वांश से मिलते हैं वा एकांश से ? इनमें एक परमाणु के अवयव दूसरे परमाणु के अवयव में लीन क्यों न हुए अवश्य लीन होंगे तो उन अवयवों के संयोग से उत्पन्न जगत् अवयवों से बड़ा कधी (कभी) नहीं हो सकता । अर्थात् परमाणु के अवयवों के संयोग से उत्पन्न ही छोटा था । अब तो परमाणु के अवयव से बड़ा किसी प्रकार नहीं हो सकता--इस प्रकार इस मत में छोटेपने का दोष लगा रह जाता है ॥ ४० ॥

**यदि सोऽप्यपरांशयुग् भवेदनवस्था विपुला तदा गता ।
विनिवारयिता कथं भवान् समतां मेरुकनीनिकांशयोः ।। ४१ ।।**

अन्वयः—यदि सः अपि अपरांशयुग् भवेत् । तदा विपुला अनवस्था आगता । भवान् मेरुकनीनिकांशयोः । समताम् कथम् विनिवारयिता ।। ४१ ।।

अन्वयार्थ—जो वह (परमाणु का अवयव) भी और (अन्य) अवयव से युक्त हो । तो बड़ी अनवस्था आ पड़ेगी । आप सुमेरु पर्वत और आँख की पुतली के अंशों की बराबरी को कैसे वारण करेंगे ? ।। ४१ ।।

भावार्थ—यदि परमाणु के अवयव के भी अवयव हैं ऐसा मान लिया जाय तो किसी को तो अवयव रहित मानिएगा तब वे ही उक्त दोष आ पड़ेंगे । जो किसी को भी अवयव रहित न मान कर अवयव के अवयव हैं इसी प्रकार कहते चले जाइएगा तो अनवस्था बनी रहेगी और सुमेरु पर्वत की ओर आँख की पुतली के अंश की बरावरी हो जायगी । क्योंकि अनगिनती अवयव दोनों में ठहरे इस दोष को आप कैसे वारण करेंगे । वस्तुतः पदार्थों के छोटे और बड़े मानने में उनके परमाणु की अल्पता और अधिकता ही कारण होती है । और आप अवयव के अवयव और अवयव के अवयव इसी प्रकार कहते चले जाते हैं । इसी प्रकार सुमेरु पर्वत और आँख की पुतली—दोनों के अंशों के अनन्त अवयव ठहरेंगे । किसी के अवयव का अन्त न हुआ तो दोनों के अंश आपस में अनन्त—अवयवत्व रूप धर्म से तुल्य सिद्ध होंगे । इतने लघु की इतने बड़े के साथ तुलना हो जाना यह जो एक बड़ा दोष है वह टल नहीं सकता । इससे यह मत ठीक नहीं है ।। ४१ ।।

इति नावसरो गिरामिह
प्रभवेत् किं त्वभिमानमात्रतः ।
विवदिष्यत एव चेद् यथारुचि
भाषस्व वशा निजा हि वाक् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—इति इह गिराम् अवसरः न प्रभवेत् । किन्तु अभिमानमात्रतः विवदिष्यते एव चेत् । यथारुचि भाषस्व हि निजा वाक् वशा ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थ—इस प्रकार इस विषय में बोलने का अवसर नहीं है । लेकिन केवल अभिमान से विवाद करने ही की इच्छा हो तो । अपनी रुचि के अनुसार (जो चाहे) कह लें, क्योंकि अपनी वाणी अपने वश में है ॥ ४२ ॥

भावार्थ—पहले कहे हुए कारणों से इस विषय में कुछ भी बोलने की जगह नहीं है । हाँ यदि केवल अहंकार से ही विवाद करना चाहें तो करें, क्योंकि अपनी जीभ अपने वश में है ॥ ४२ ॥

चरणाक्षमतेऽपि तादृशं
न निवृत्ता वचनीयताऽस्ति सा ।
स हि वस्तुविचारणे कृते
क्वचिदेवाऽस्ति कणादतोऽन्यथा ।। ४३ ।।

अन्वयः—चरणाक्षमते अपि (सर्वम्) तादृशम् । (अतः) सा वचनीयता निवृत्ता न अस्ति । वस्तुविचारणे हि कृते । सः क्वचित् एव कणादतः अन्यथा अस्ति ।। ४३ ।।

अन्वयार्थ—(अक्षपाद) गौतम जी के मत में भी (सब) वैसा ही है । (इस से) वह दोष निवृत्त नहीं होता । वस्तु के विचार करने पर तो । वह कहीं-कहीं कणाद ऋषि से और (भिन्न) प्रकार का है ।। ४३ ।।

भावार्थ—चरण में है नेत्र जिनके ऐसे चरणाक्ष गौतमजी के मत में भी प्रायः सब (बातें) कणाद ऋषि के मत के समान हैं । इससे उक्त वह दोष टल नहीं सकता अर्थात् अवश्य लगता है (बना रहता है) । क्योंकि वस्तु को जब विचारते हैं तो दोनों ऋषियों के मत में कहीं-कहीं थोड़ा सा अन्तर तो है—शेष दोनों मत प्रायः एक से हैं ।। ४३ ।।

कलया गणितानबूबुधत् स
पदार्थान् कणभुक् च सप्त तान् ।
पददृक् तु कथाङ्गसंग्रहं
कुरुतेऽन्यस्तु लघुत्वलालसः ।। ४४ ।।

अन्वयः—सः (गौतमः) कलया गणितान् पदार्थान् अबूबुधत् । कणभुक् च तान् सप्त (अबूबुधत्) । पददृक् तु कथाङ्ग-सङ्ग्रहम् कुरुते । अन्यः तु लघुत्वलालसः अस्ति ।। ४४ ।।

अन्वयार्थ—उस (गौतमऋषि) ने सोलह से गिने गए पदार्थों को माना है । कणाद जी ने उन सोलहों को सात कहा है । चरणाक्ष जी कथा के अङ्गों को सङ्ग्रह करते हैं । और दूसरे कणाद जी तो लाघव की लालसा रखते हैं ।। ४४ ।।

भावार्थ—गौतम भगवान् ने केवल सोलह पदार्थ हैं—यह कहा है । कणाद ऋषि ने ये सोलहों को सात के भीतर आ जायँगे-यह सोचकर सात ही पदार्थ हैं—ऐसा लिखा है । गौतम भगवान् ने नास्तिकों के साथ विचार करने में तत्त्व का निर्णय और जय-पराजय की व्यवस्था ठीक-ठीक होवे (क्योंकि कथा के अङ्गों का ठीक-ठीक संशोधन न होने से नास्तिक लोग अन्याय से कोलाहल कर अपना विजय मान लेते थे इसलिए) वाद, जल्प, बितण्डा, इन तीनों कथा के अङ्गों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है—वस्तुतः ये सब प्रमेय के भीतर आ जाते हैं इसी विचार से कणाद जी ने उन पदार्थों को संक्षेप के लिए सात माना है । इस मत में एक पदार्थ में दूसरे का अन्तर्भाव नहीं होता—इतना ही भेद है पर और सब एक सा है ।। ४४ ।।

अथ कापिलमप्यऽवेक्ष्यते मत-
मत्रास्ति सतः कृतिस्तु या ।
पुरतो मथितैव सा त्विहा-
ऽपरमप्यस्ति विवक्षितं विदाम् ।। ४५ ।।

अन्वयः—अथ कापिलम् अपि मतम् अवेक्ष्यते । अत्र तु या सतः कृतिः सा पुरतः मथिता एव । तु विदाम् इह अपरम् अपि विवक्षितम् अस्ति ।। ४५ ।।

अन्वयार्थं—अब कपिल जी का मत विचारा जाता है। इसमें जो सत् (पदार्थ) की उत्पत्ति है उसका पहिले ही खण्डन किया गया है। परन्तु विद्वानोंको इस मत पर और भी कुछ कहना है।। ४५ ।।

भावार्थं—अब जब कपिलदेवजी के साङ्ख्यशास्त्र की परीक्षा की जाती है तब इस शास्त्र का जो सत्कार्यवाद है–उसका खण्डन पहिले ३० से ३५ तक के श्लोकों से हो चुका है। लेकिन सत्कार्यवाद से भिन्न जो साङ्ख्य के सिद्धान्त हैं उन पर भी विद्वानों को बहुत कुछ कहने की इच्छा है ।।४५।।

जगतः किल कारणं परं प्रकृतिः सत्त्वरजस्तमोमयी ।
अनपेक्ष्य चितोऽन्तराशयं मतमेतत् कपिलस्यसम्मतम् ।। ४६ ।।

अन्वयः—चितः अन्तराशयम् । अनपेक्ष्य । सत्त्वरजस्तमोमयी प्रकृतिः । जगतः परम् कारणम् किल । एतत् मतम् कपिलस्य सम्मतम् ।। ४६ ।।

अन्वयार्थ—पुरुष की इच्छा की चाह न करके । सत्त्वगुण-तमोगुण-रजोगुण वाली प्रकृति । जगत् की उत्पत्ति का मुख्य कारण है । यह मत कपिलदेवजी का सम्मत है ।। ४६ ।।

भावार्थ—ईश्वर की इच्छा के बिना अर्थात् स्वतन्त्र होकर सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण स्वरूप वाली जड़ प्रकृति जगत् की उत्पत्ति में मुख्य कारण है । अर्थात् ईश्वर कुछ नहीं करता, वह किसी का कारण नहीं है प्रकृति आप ही आप जगत् को उत्पन्न करती है—यह कपिलदेव जी का मत है ।। ४६ ।।

विदुषा स्वधिया निरीक्ष्यतां
जडमात्रं मतिमन् महीपवत् ।
कमलोद्भववच्च पालयेद्
विदधीताऽप्यखिलाः प्रजा इमाः ।। ४७ ।।

अन्वयः—जडमात्रम् इमाः अखिलाः अपि प्रजाः । कमलोद्भववद् विदधीत । मतिमन् महीपवत् पालयेत् च । इति विदुषा स्वधिया निरीक्ष्यताम् ।। ४७ ।।

अन्वयार्थ—जड़मात्र (प्रकृति) इन सब ही प्रजाओं को । ब्रह्माजी के समान उत्पन्न करे । और बुद्धिमान् राजा के तुल्य पाले । यह पक्ष स्वयं विद्वान् अपनी बुद्धि से विचारें ।। ४७ ।।

भावार्थ—इसे विद्वान् लोग एकाग्र चित्त हो अपनी बुद्धि से विचारें कि जड़स्वभाव प्रकृति, इन सब चैतन्य प्रजाओं को भी ब्रह्माजी के समान सृजती है और बुद्धिमान राजा के समान पालती है—यह कभी हो सकता है ? अर्थात् कधी (कभी) नहीं । क्योंकि लोक में यह नियम प्रत्यक्ष है कि गेंहूँ से गेंहूँ और चना से चना उत्पन्न होता है अर्थात् जड़ से जड़ उत्पन्न होता है और भिन्न स्वभाव वाला नहीं उत्पन्न होता तो जड़ स्वभाव वाली प्रकृति चित् पुरुष की सहायता के बिना कभी भी चैतन्य स्वभाव वाले मनुष्य आदि जीवों को उत्पन्न नहीं कर सकती । इसे एकाग्रचित्त से विचारना चाहिए ।। ४७ ।।

**इतिविश्वसि तु क्षितौ जनः कतमो लोकविलोकजातधीः ।
प्रविहाय तु शैशवात् परं प्रकृताचार्यवचो विमोहितम् ।।४८।।**

अन्वयः—शैशवात् परम् प्रकृताचार्यवचो विमोहितम् प्रविहाय तु । क्षितौ लोकविलोकजातधीः कतमः जनः इति विश्वसितु । (न कोऽपि इति शेषः) ।। ४८ ।।

अन्वयार्थ—बाल अवस्था के उपरान्त ही साङ्ख्य आचार्य के वचनों से जो मोहित हो रहा है उसके सेवाय (सिवा) । पृथिवी पर संसार के देखने से उत्पन्न हुई है बुद्धि जिसे ऐसा कौन मनुष्य है जो इसे विश्वास करे (अर्थात् कोई भी बुद्धिमान् विश्वास नहीं कर सकता ।। ४८ ।।

भावार्थ--बाल अवस्था के अनन्तर ही साङ्ख्य शास्त्राचार्य के वचनों के सुनने से जिसे मोह उत्पन्न हो रहा है ऐसे मनुष्य को छोड़ संसार में ईश्वरीय अद्भुत चमत्कार के देखने से जिसकी उत्तम बुद्धि हो रही है ऐसा कौन सा मनुष्य है जो जडस्वभाव प्रकृति सब करती है—अर्थात् चैतन्य जीव तक को उत्पन्न करती है—इसे कोई कैसे विश्वास करेगा ? वरन् इसको कोई भी बुद्धिमान् विश्वास नहीं कर सकता ।। ४८ ।।

यदवोचदयं पयोजनिर्जडतोऽप्यस्ति शिशोर्विवृद्धये ।
कथमास्तिकता सहेत तत् परमेशो हि ततोऽवबुध्यते ।। ४९ ।।

अन्वयः—अयम् शिशोः विवृद्धये जडतः अपि । पयोजनिः अस्ति (इति) यद् अवोचत् । आस्तिकता तत् कथम् सहेत । हि ततः परमेशः अवबुध्यते ।। ४९ ।।

अन्वयार्थ—इस (साङ्ख्य के आचार्य) ने लड़कों के पोषण के लिए जड़ से भी । दूध उत्पन्न होता है (यह) जो कहा है । आस्तिक बुद्धि इस को कैसे सह सकती है । क्योंकि इन्हीं बातों से परमेश्वर जाना जाता है ।। ४९ ।।

भावार्थ—जड़ आप ही बिना किसी प्रेरणा के कार्य करता है—इसमें साङ्ख्य वालों ने यह दृष्टान्त दिया है कि—गौ सब दिन तृण आदि खाती है पर सदा वह तृण आदि जड़, दूध नहीं हो जाता है, जब बच्चा होता है तब ही वही जड़, तृण आप दुग्ध रूप हो जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि जड़ प्रकृति दूसरे की प्रेरणा के बिना भी आप ही कार्य करती है। पर इस बात को आस्तिक बुद्धि किस प्रकार मान सकती है अर्थात् न मानेगी। क्योंकि ऐसे ही चमत्कारों से ईश्वर जाना जाता है (ईश्वर की सिद्धि होती है।) ।। ४९ ।।

अनयैव दिशा स योगवित् प्रकृतेराश्रयणात् पृथक् कृतः ।
परमेश्वरदर्शनक्रियाकथनात् किन्तु समादृतोऽप्यभूत् ।। ५० ।।

अन्वयः—सः योगवित् अनया एव दिशा । प्रकृतेः आश्रयणात् पृथक् कृतः । किन्तु परमेश्वरदर्शनक्रियाकथनात् समादृतः अपि अभूत् ।। ५० ।।

अन्वयार्थ—वह योग के जानने वाले (पतञ्जलि ऋषि) इसी प्रकार से । प्रकृति के आश्रयण से अलग किए गए थे । परन्तु परमेश्वर के दर्शन के उपाय के कहने से आदर के योग्य भी हुए थे ।। ५० ।।

भावार्थ—योग शास्त्र के आचार्य पतञ्जलि ऋषि का भी सिद्धान्त है कि प्रकृति आप ही से सब करती है । इससे वह मानने के योग्य नहीं है । परन्तु परमेश्वर के दर्शन के परम उपाय, समाधि का निरूपण करने से वह आदर के भी योग्य हैं ।। ५० ।।

इति सूक्ष्मनिरीक्षणे कृते नहि कस्यापि जगन्निरूपणा ।
मनसो हरणक्षमाभवेदपि यत्नो बहुधा विधीयताम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—इति सूक्ष्मनिरीक्षणें कृते । कस्य अपि जगन्निरूपणा । मनसः हरणक्षमा हि न भवेत् । बहुधा यत्न विधीयताम् अपि ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ—इस प्रकार से सूक्ष्म विचार करने पर । किसी का भी जगत् का निरूपण करना । मन के हरने में समर्थ नहीं है । चाहे कितना भी जतन किया जाय ॥ ५१ ॥

भावार्थ—उक्त प्रकार से सूक्ष्म विचार करने पर शास्त्रकारों का जगत् की उत्पत्ति का वर्णन करना मन में अच्छा (तर्कसंगत) नहीं मालूम पड़ता (नहीं जँचता)—चाहे कितना भी जतन कीजिए ॥ ५१ ॥

**श्रुतिवाक्यविचारणाय यद् रचितं जैमिनिना तु दर्शनम् ।
वचसः परतावधारणे क्षमते तन् न तु सृष्टिधीजनौ ।। ५२ ।।**

अन्वयः—जैमिनिना तु श्रुतिवाक्यविचारणाय । यद् दर्शनम् रचितम् । तद् वचसः परतावधारणे क्षमते । सृष्टिधीजनौ तु न (क्षमते) ।। ५२ ।।

अन्वयार्थ—जैमिनि (भगवान्) ने तो वेदवाक्यों के विचार के लिए। जो शास्त्र रचा है। वह वाक्यों के अर्थ निश्चय करने में समर्थ है। सृष्टि-विषयक बुद्धि के उत्पन्न करने में तो (समर्थ) नहीं है ।। ५२ ।।

भावार्थ—जैमिनि भगवान् ने वेदवाक्यों के विचार करने के लिए मीमांसा नामक जिस शास्त्र को बनाया है। वह शास्त्र केवल श्रुतियों के अर्थ का निश्चय तो भली-भाँति करा देता है। और स्वतन्त्र होकर सृष्टि के विषय का नहीं वर्णन करता है। इस कारण उस शास्त्र से सृष्टि किस प्रकार से हुई—यह बुद्धि (विवेक) उत्पन्न नहीं होती ।। ५२ ।।

अवदच्च यदेष न क्रियाव्यतिरिक्तार्थकता श्रुतेरिति ।
फलवत् प्रतिपादनादितः श्रुतिमूर्द्धज्ञवरैरखण्डित तत् ।।५३।।

अन्वयः—एषः इतः फलवत् प्रतिपादनात् (हेतोः) । श्रुतेः क्रियाव्यतिरिक्तार्थकता न इति यद् अवदत् । तत् श्रुतिमूर्द्धज्ञवरैः अखण्डित ।। ५३ ।।

अन्वयार्थ—इस (जैमिनी जो) के (वेद में) सफल बातों का ही वर्णन है-इस कारण । वेद का कर्म करना (इससे) भिन्न अर्थ नहीं है—यह जो कहा है । इसे श्रुति के उत्तम भाग (उपनिषद्) के ज्ञाता आचार्यों ने खण्डन किया है ।। ५३ ।।

भावार्थ—जैमिनि भगवान् ने "अम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्"—इस सूत्र में लिखा है कि कर्म को छोड़ और कहीं भी वेद का अभिप्राय नहीं है। इस बात का उपनिषद् के तत्त्व जानने वाले आचार्यों ने भली भाँति खण्डन किया है। खण्डन करने वालों का यह अभिप्राय है कि ब्रह्म के प्रतिपादक वाक्यों का कर्म में तात्पर्य किसी प्रकार से नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्मज्ञान का यदि कुछ फल न होता तो उन वाक्यों के अर्थ खींच कर कर्म की ओर लगाते। जब कि ब्रह्मज्ञान के सदृश उत्तम फल का देने वाला कोई भी नहीं है। कारण कि इससे अनादि काल के संचित किए हुए कर्मक्लेश सब नष्ट हो जाते हैं और स्वरूपानन्द प्राप्त हो जाता है। तब ब्रह्मज्ञान के उपजाने वाले उपनिषद् वाक्यों का अर्थ वहीं से खींच कर्म की ओर लगाना क्योंकर माना जा सकता है। अर्थात् नहीं माना जा सकता ।। ५३ ।।

इति वेदवचांस्यनेकधा कथयन्त्यत्र सदेकवस्तुताम् ।
पशुदृष्टिवदेव कल्पिता स्वपरस्मिन्निह भेदभावना ।। ५४ ।।

अन्वयः—इति अत्र (उक्ते सति) वेदवचांसि सदेकवस्तुताम् । अनेकधा कथयन्ति । इह स्वपरस्मिन् भेदभावना । पशुदृष्टिवत् एव कल्पिता ।। ५४ ।।

अन्वयार्थ—इस प्रकार उपनिषदों का तात्पर्य कर्म की ओर नहीं हो सकता इसके कहे जाने पर (जाना जाता है कि) वेद वाक्य सच्चिदानन्द वस्तु की एकता को अनेक प्रकार से कहते हैं । इस संसार में अपना और पराया यह जो भेद बुद्धि है वह । पशुदृष्टि के समान कल्पित है ।। ५४ ।।

भावार्थ—इस प्रकार उपनिषद् वाक्यों का तात्पर्य जब कर्म में नहीं हो सकता तव उन वाक्यों से यही सिद्ध हुआ कि सच्चिदानन्दरूप वस्तु एक है । इस संसार में भेददृष्टि पशुदृष्टि के समान अज्ञान से कल्पना की गई है ।। ५४ ।।

इति युक्तिबलेन सिध्यति जगतः स्वप्नसदृक्षता विदाम् ।
रजतादि हि दोषयोगतः किमु नालोकमवेक्षितं बहु ॥ ५५ ॥

अन्वयः—विदाम् इति युक्तिबलेन । जगतः स्वप्नसदृक्षता सिध्यति । हि दोषयोगतः रजतादि अलीकम् । किमु बहु न अवेक्षितम् ? । किन्तु अवेक्षितम् एव ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थ—पण्डितों को इस युक्ति के बल से । जगत् का स्वप्न के समान होना सिद्ध होता है । क्योंकि भ्रम के कारण रजत आदि मिथ्या पदार्थ । क्या बहुत नहीं देखे गए हैं ? (किन्तु देखे ही गए हैं) ॥ ५५ ॥

भावार्थ—उक्त उक्तियों के बल से जगत् का स्वप्न के समान होना पण्डितों के चित्त में सिद्ध होता है । देखो—जैसे स्वप्न देखते समय जो देख पड़ता है वह निद्रा खुलने पर मिथ्या भासित होता है । इसी प्रकार उक्त विचार से ज्ञान होने पर संसार स्वप्न सदृश मिथ्या जान पड़ता है । बहुत बार देखने में भी आया है कि नेत्र-दोष से वा भ्रम से शुक्ति और रसरी (रस्सी) में चांदी और सर्प की भ्रान्ति होती है । जब तक भ्रान्ति निवृत्त नहीं होती तब तक वह सत्य भासित होता है । इसी प्रकार अज्ञान जबतक निवृत्त नहीं होता तब तक जगत् सत्य मालूम पड़ता है । विचारपूर्वक ज्ञान होने पर जगत् का असत् होना निश्चित होता है ॥ ५५ ॥

सकलं जगदस्ति कल्पितं चिदधिष्ठानमवाप्य शाश्वतम् ।
चिदबोधत एव केवलं चित आप्तौ तु न किञ्चनाप्यदः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—केवलम् चिदबोधतः एव । शाश्वतम् चित् अधिष्ठानम् अवाप्य । सकलम् जगत् कल्पितम् अस्ति । चितः आप्तौ तु अदः किञ्चन अपि न ॥ ५६ ॥

अन्वयार्थ—केवल चित् (ब्रह्मतत्त्व) के जानने ही से । नित्य ब्रह्म-रूप आधार को पाकर । सब जगत् कल्पित किया गया है (ऐसा माना जाता है) । ब्रह्मज्ञान के प्राप्त होने पर तो यह कुछ भी नहीं है ॥ ५६ ॥

भावार्थ—केवल ब्रह्मतत्त्व के अज्ञान ही से ब्रह्मरूप अधिष्ठान में समग्र जगत् की कल्पना की गई है पर ब्रह्मज्ञान के होने पर यह जगत् कुछ भी नहीं रह जाता—जैसे रसरी में मिथ्या सर्प का भ्रम—रसरी के ज्ञान होने पर कुछ भी नहीं रहता अर्थात् असत् मालूम होता है ॥ ५६ ॥

प्रथमभ्रमजात्र संस्कृतिश्चरमभ्रान्तिसहायतामिता ।
प्रथमेऽपि ततोऽपि पूर्वजा त्वऽतिसद्ध्र्यक्त्वमुपागता तथा ।।५७।।

अन्वयः—अत्र प्रथमभ्रमजा संस्कृतिः । चरमभ्रान्तिसहाय-ताम् इता । तथा प्रथमे अपि ततः अपि पूर्वजा तु अति सद्ध्र्य-क्त्वम् उपागता ।। ५७ ।।

अन्वयार्थ—यहाँ पहिले भ्रम से उत्पन्न हुआ भ्रम-संस्कार । अन्त के भ्रम का सहायक होता है। इसी प्रकार पहिले भ्रम में भी उससे भी पहिले उत्पन्न भ्रम-संस्कार । अत्यन्त सहायक हो गया है ।। ५७ ।।

भावार्थ—यहाँ कदाचित् यह शंका हो कि भ्रम तो पहिले कहीं अन्यत्र देखे हुए पदार्थों का होता है और जगत्-कल्पना, स्थान को छोड़ और कहीं अन्यत्र देखी नहीं जाती। इससे यह जगत्, भ्रमरूप कैसे हो सकता है ? इस शंका का उत्तर यह है कि पूर्व कल्प के भ्रम से दूसरे कल्पवाला भ्रम उत्पन्न होता है। और उससे भी पूर्व कल्प के भ्रम से उस कल्प का भ्रम उत्पन्न होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर भ्रम पूर्व-पूर्व भ्रम से उत्पन्न होते चले आते हैं ॥ ५७ ॥

समयस्य न कोऽपि विद्यते प्रथमो
वाप्यथ वान्तिमोऽवधिः ।
क्व भवोऽस्ति पुरावलोकितः
सुसमाधानमिदं ततो भवेत् ।। ५८ ।।

अन्वयः—समयस्य कः अपि प्रथमः वा । अथवा अन्तिमः अपि अवधिः न विद्यते । ततः पुरा अवलोकितः भवः क्व अस्ति ? इदम् सुसमाधानम् भवेत् ।। ५८ ।।

अन्वयार्थ—समय की कोई भी पहिली (अवधि) । अथवा अन्त की भी कोई अवधि नही है । इस कारण से पहिले देखा गया संसार कहाँ है ? । (अर्थात् कहीं नहीं है) । यही अच्छे प्रकार का समाधान हो सकता है ॥ ५८ ॥

भावार्थ—यदि यह शंका हो कि सबसे पहिले भ्रम की उत्पत्ति कैसे होगी अर्थात् जो प्रथम भ्रम है उसके पूर्व तो भ्रम हो नहीं सकता—नहीं तो उसको प्रथम नहीं कह सकते । अतः अब यदि कहें कि पहिले बिना कहीं देखे गए का भ्रम कैसे उत्पन्न हुआ ? इस शंका का समाधान यह है कि समय के आदि और अन्त की कोई अवधि नहीं है । इसी कारण से पहिले देखा गया संसार कोई हो सकता ? अर्थात् कोई नहीं पहिला कहा जा सकता । अनादि काल से ऐसे ही चला आया है और चला जायगा—यह एक अच्छे प्रकार का समाधान हो सकता है ॥ ५८ ॥

इदमास्तिकमात्रभाषिते शरणं नेतरदस्ति दृश्यताम्
जगतोऽस्ति विचित्रता पुराकृतकर्मभ्य इतीरयन्त्यमी ।। ५९ ।।

अन्वयः—आस्तिकमात्रभाषिते इदम् शरणम् अस्ति । इतरद् न । दृश्यताम् अमी । जगतः विचित्रता पुराकृतकर्मभ्यः अस्ति इति ईरयन्ति ।। ५९ ।।

अन्वयार्थ—सब आस्तिकों के कथन में यही शरण है । दूसरी (शरण) नहीं है । देखो ये सब आस्तिक लोग । जगत् की विचित्रता पूर्व में किए गए कर्मों के अनुसार होती है, यह कहते हैं ।। ५९ ।।

भावार्थ—जितने आस्तिक हैं उनके सबके कथन में उक्त वही समाधान ठीक हो सकता है । क्योंकि सब आस्तिक लोग जगत् में पशु-पक्षी आदि के या देव-मनुष्य आदि के शरीर की प्राप्ति अथवा सुखी-दुःखी, धनी-दरिद्र, या जन्म ही से रोगी या हृष्ट-पुष्ट होना इत्यादि संसार की विचित्रता का कारण पूर्वजन्म के शुभ-अशुभ कर्मों को कहते हैं । इसमें भी वही शंका होती है कि इस जन्म के सुख-दुःख का तो इसके पूर्व जन्म का सुख-दुःख कारण है । पर पूर्व जन्म में जो सुख-दुःख हुए थे उनका कौन कारण है ? अथवा सबसे प्रथम जन्म के सुख दुःख के लिए कौन सा पूर्व जन्म हो सकता है, जिसमें किया हुआ पाप-पुण्य कारण होगा ? इसके उत्तर के लिए भी उक्त श्लोक वाला ही उत्तर शरण है अर्थात् समय की कोई भी अवधि नहीं है । यह अनादि चक्र चला आता है । इसमें किसी को पहिला नहीं कह सकते । इसे विचारदृष्टि से देखिए ।। ५९ ।।

परिहृत्य हृदोऽतिचापलं चिरकालं सुविभावने कृते ।
विमलाशययुक् विभावयेन् मृगतृष्णावदिमां भवार्थनाम् ।।६०।।

अन्वयः—हृदः अतिचापलम् परिहृत्य । चिरकालम् सुविभावने कृते । विमलाशययुक् इमाम् भवार्थनाम् । मृगतृष्णावत् विभावयेत् ।। ६० ।।

अन्वयार्थ—चित्त की चञ्चलता को छोड़ कर । बहुत काल तक विचार करने पर । विमल बुद्धि वाला (पुरुष) इस सांसारिक इच्छा को मृगतृष्णा के तुल्य देखे ।। ६० ।।

भावार्थ—मनुष्य लोग हृदय की चञ्चलता को छोड़ बहुत दिनों तक विचार करें तो निर्मल चित्त से देख सकेंगे कि संसार के पदार्थों की इच्छा मृगतृष्णा के समान है। अर्थात् जैसे मृगतृष्णा का विषय मिथ्या होता है इसी प्रकार संसार के पदार्थों की इच्छा भी असत्य-विषयिणी इच्छा है ।। ६० ।।

परमेश्वरशक्तितोऽपि वा कथमप्येतदवस्तु वस्तु वा।
प्रतिभाति तथापि नोचिता विदुषामत्र नितान्तलीनता ॥६१॥

अन्वय:—अपि वा एतद् अवस्तु वा वस्तु। परमेश्वरशक्तित: कथम् अपि प्रतिभाति। तथापि अत्र विदुषाम् नितान्तलीनता न उचिता ॥ ६१ ॥

अन्वयार्थ—अथवा यह जगत् चाहे झूठ वा सत्य हो। परमेश्वर की शक्ति से किसी प्रकार का भासित होता है। तो भी इस जगत् में विद्वान् को अत्यन्त लीन होना उचित नहीं है ॥ ६१ ॥

भावार्थ–यदि यह मान लिया जाय कि जगत् सत्य है वा मिथ्या है—इसे कोई निश्चय नहीं कर सकता, यह केवल ईश्वर की शक्ति से किसी प्रकार का भासित होता है, तो भी बुद्धिमानों को चाहिए कि इस संसार में अत्यन्त लीन न होंवे ॥ ६१ ॥

अनिशं बहुयत्नसाधनैः
परितः पान्ति कलेवरं जनाः ।
तदपि स्ववशे न तिष्ठति
किमिवान्यत् स्वमनो ऽनुवर्त्तताम् ।। ६२ ।।

अन्वयः—जनाः बहुयत्नसाधनैः । कलेवरम् अनिशम् परितः पान्ति । तत् अपि स्ववशे न तिष्ठति । अन्यत् किम् इव स्वमनः अनुवर्त्तताम् ।। ६२ ।।

अन्वयार्थ—मनुष्य लोग बहुत से जतन और सामग्रियों से । शरीर की रात दिन सब ओर से रक्षा करते हैं । वह भी अपने वश में नहीं रहता है । और कौन सी वस्तु है जो अपने मन के अनुसार रहेगी ।।६२।।

भावार्थ—क्योंकि मनुष्य लोग बहुत से जतन और उपायों से अपने शरीर की सदा सब प्रकार से रक्षा करते रहते हैं । वह शरीर भी अपने वश में नहीं रहता तो दूसरी कौन सी वस्तु है जो अपने चित्त के अनुसार रहेगी ।। ६२ ।।

परिपश्यत एव शैशवं युवताप्यस्तमुपैति देहिनाम् ।।
सततोन्मिषितैर्मनोरथैर्नं तु जानन्ति जरां समागताम् ।। ६३ ।।

अन्वयः—देहिनाम् शैशवम् युवता अपि । परिपश्यतः एव अस्तम् उपैति । सततोन्मिषितैः मनोरथैः (युक्ताः ते) । समागताम् जराम् तु न जानन्ति ।। ६३ ।।

अन्वयार्थ—प्राणियों की लड़काई और जवानी भी । देखते ही देखते बीत जाती है । नित्य उदय हुए मनोरथों से (युक्त वे लोग) । आई हुई बुढ़ाई को नहीं जानते ।। ६३ ।।

भावार्थ—मनुष्यों की लड़काई और जवानी तो देखते देखते ही अर्थात् अतिशीघ्र चली जाती है । तब भी नित्य नए नए मनोरथों को करते रहते हैं और आई हुई बुढ़ाई की ओर ध्यान नहीं देते अर्थात् पहली दोनों अवस्था को संसारी कामों में विताकर बुढ़ाई में भी ईश्वर की ओर चित्त नहीं लगाते ।। ६३ ।।

**निखिला अपि ते मनोरथा हृदि कोलाहलमेव कुर्वते ।
विषयैस्तु निजैः समागमं न लभन्तेऽब्दशतेऽप्यहो गते ।।६४।।**

अन्वयः—ते निखिलाः मनोरथाः अपि । हृदि एव कोलाहलम् कुर्वते । अहो अब्दशते गते अपि । निजैः विषयैः समागमम् न लभन्ते ।। ६४ ।।

अन्वयार्थ—वे सब मनोरथ भी । हृदय में ही कोलाहल किया करते हैं । आश्चर्य है कि सौ वर्ष बीतने तक भी । अपने विषय को नहीं पाते ।। ६४ ।।

भावार्थ—वे सब मनोरथ मनके मनही में हो रह जाते हैं । सौ वर्ष बीतने पर भी अर्थात् इस आयु भर में भी वे मनोरथ पूरे नहीं होते । अथवा पिता के मनोरथ पूरा करने के लिए पुत्र, पौत्र तक भी यत्न करते जाते हैं, पर नहीं कर पाते ।। ६४ ।।

नयनोरुपयोधराह्वयानऽपि चर्मावृतमांसपिण्डकान् ।
अवलोक्य विमोहिताशया जहतीहाऽखिलभद्रमात्मनः ।।६५।।

अन्वयः—नयनोरुपयोधराह्वयान् चर्मावृतमांसपिण्डकान् अपि अवलोक्य। विमोहिताशयाः इह आत्मनः अखिलभद्रम् जहति ।। ६५ ।।

अन्वयार्थ—आँख, जांघ, स्तन नाम के चमड़े से मढ़े मांस के पिण्ड को भी देखकर। मोहित हुए मनुष्य लोग इस संसार में अपने सब कल्याण का त्याग कर देते हैं ।। ६५ ।।

भावार्थ—मनुष्य लोग सुन्दर आँख, जाँघ, स्तन वाली स्त्रियों को देख-कर मोह जाते हैं अपने को भूलकर इस संसार में अपनी भलाई को अर्थात् अपने सब कर्त्तव्यों का त्याग कर देते हैं ।। ६५ ।।

लब्ध्वाऽपि दैवाद् विषयोपभोगं
चिरान्मनः कोटरसम्प्रविष्टम् ।
तृष्णापिशाचोपरिभूतचित्ताः
सन्तोषमन्तेऽपि न बिभ्रतेऽमी ।। ६६ ।।

अन्वयः—चिरात् मनः कोटरसम्प्रविष्टम् । विषयोपभोगम् दैवात् लब्ध्वा अपि । तृष्णापिशाचीपरिभूतचित्ताः अमी । अन्ते अपि सन्तोषम् न बिभ्रते ।। ६६ ।।

अन्वयार्थ—बहुत काल से मन के भीतर प्रविष्ट । विषय के भोगों को दैव संयोग से पाकर भी । तृष्णा रूपी पिशाची से विनाशित चित्त के मनुष्य लोग । अन्त में भी सन्तोष को नहीं धारण करते ॥ ६६ ॥

भावार्थ—चिर काल से मन के भीतर विद्यमान विषय-भोग के दैव-संयोग से मिलजाने पर भी—तृष्णा रूपी चुड़ैल मन में घुसी है—इस कारण से ये मनुष्य लोग अन्तकाल के समीप आने पर भी अर्थात् अतिवृद्ध होने पर भी सन्तोष को धारण नहीं करते ॥ ६६ ॥

गीतं पुरा साधु ययातिनाऽत्र न
जातु कामो विषयानुषङ्गात् ।
शमं व्रजेत् प्रत्युत याति वृद्धि
हविः प्रपद्येव हविर्भुगिद्धः ।। ६७ ।।

अन्वयः—अत्र ययातिना पुरा साधु गीतम् । कामः विषयानुषङ्गात् जातु शमम् न व्रजेत् । प्रत्युत हविः प्रपद्य इद्धः । हविर्भुक् इव वृद्धिं याति ।। ६७ ।।

अन्वयार्थ—इस विषय में राजा ययाति बहुत पहिले बड़ी अच्छी बात कह गए हैं। मनोरथ अपनी चाही हुई वस्तु के मिलने से कभी भी शान्ति को नहीं प्राप्त कर पाता । वरन् घी को पाकर प्रकाशमान । अग्नि के समान वृद्धि को प्राप्त होता है ।। ६७ ।।

भावार्थ—इस विषय में राजा ययाति ने बड़ी अच्छी बात कही है कि विषयों के भोग से इच्छा कभी भी शान्त नहीं होती वरन् जैसे आग घी, हवि आदि के पाने से अत्यन्त बढ़ती है वैसे इच्छा भोग को पाकर दिन-दिन बढ़ती जाती है ।। ६७ ।।

जरासमुद्यत् कफघुर्घुरस्वरा
दारिद्र्यदावानलदग्धवाञ्छिताः ।
विमर्दिताश्चापि नृपारितस्करैः
स्मरन्ति नारीकिलकिञ्चितान्यहो ।। ६८ ।।

अन्वयः—जरासमुद्यत्कफघुर्घुरस्वराः । दारिद्र्यदावानल-दग्धवाञ्छिताः । नृपारितस्करैः विमर्दिताः अपि । नारीकिल-किञ्चतानि स्मरन्ति अहो ।। ६८ ।।

अन्वयार्थ—बुढ़ाई के कारण उत्पन्न हुए कफ से घुर्घुर शब्द करने वाले । दरिद्रता रूपी दावाग्नि से दग्ध मनोरथ । और राजा से, शत्रु से, तस्करों से, चारों से पीड़ित मनुष्य भी । स्त्रियों के विलास को स्मरण करते हैं—यह कैसा आश्चर्य है ।। ६८ ।।

भावार्थ—बुढ़ाई से जिनके कण्ठ में कफ घुर्घुर शब्द करता है, दरिद्रता के कारण मन भी मरा सा रहता है, राजा, शत्रु और चोरों के उपद्रव से पीड़ित भी हैं अर्थात् अति वृद्ध, अति दरिद्र और अति पीड़ित भी हैं तो भी लोग स्त्रियों के हावभाव को स्मरण करते हैं और अन्त को नहीं विचारते—यह कैसा आश्चर्य है ।। ६८ ।।

आसिन्धु भूमीवलयाधिपत्यम्
लोकत्रयोल्लासिनतभ्रुवो वा ।
यद् वा विधातुः सकलापि सृष्टि-
र्नैकस्य पुंसोऽपि वितृप्तये स्युः ।। ६९ ।।

अन्वयः—आसिन्धुभूमीवलयाधिपत्यम् । लोकत्रयोल्लासिनतभ्रुवः वा । यद् वा विधातुः सकला अपि सृष्टिः । एकस्य पुंसः वितृप्तयेन स्युः ।। ६९ ।।

अन्वयार्थ—समुद्र पर्यन्त पृथ्वी-मण्डल का राज्य । तीनों लोकों की सुन्दर स्त्रियाँ । अथवा ब्रह्माजी की सब सृष्टि भी । एक पुरुष की विशेष तृप्ति के लिए पर्याप्त नहीं हो सकती ।। ६९ ।।

भावार्थ—समुद्र पर्यन्त पृथिवी का राज्य, तीनों लोकों की सब कामिनियाँ अथवा ब्रह्माजी की सृष्टि के भीतर के सब भोग्य पदार्थ—एक पुरुष के भी मन के विशेष सन्तोष के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते । इसी धन, धान्य, स्त्री, हाथी, घोड़ा आदि भोग्य पदार्थों का संग्रह करके सन्तुष्ट होंगे—यह आशा करना बड़ी भूल है ।। ६९ ।।

अनन्तकोटीर्जनुषां सहस्र-
क्लेशावलीव्याकुलिता व्यतीत्य ।
कथञ्चिदासाद्य मनुष्यजन्म
श्रमात् पुनः संसृतिमर्जयन्ति ।। ७० ।।

अन्वयः—सहस्रक्लेशावलीव्याकुलिताः । जनुषाम् अनन्त-कोटीः व्यतीत्य । कथञ्चित् मनुष्यजन्म आसाद्य । श्रमात् पुनः संसृतिम् अर्जयन्ति ।। ७० ।।

अन्वयार्थ—हजारों क्लेशों के समुदाय से व्याप्त । जन्म की असङ्ख्य कोटि को बिता कर । किसी प्रकार मनुष्य के देह को पाकर । बड़े जतन से फिर भी संसार ही का उपार्जन किया चाहते हैं ।। ७० ।।

भावार्थ—हजारों क्लेशों के समूह से युक्त, अनन्त करोड़ों जन्म को भोग कर, कोई बड़ा पुण्य बन पड़ा होगा जिस कारण मनुष्य का जन्म मिल पाता है । इसमें मनुष्य जन्म में संसार से अपना उद्धार हो—ऐसा उपाय करना चाहिए । उस उपाय की ओर तो ध्यान ही नहीं देते और बड़े परिश्रम से फिर आवागमन अर्थात् जन्म-मरण ही का उपार्जन करते हैं और मोक्ष का उपाय नहीं सोचते ।। ७० ।।

दिने दिने कालफणी प्रकोपं
कुर्वन् समागच्छति सन्निधानम् ।
निपीतमोहासवजातमादो
न भीतिमायाति कदापि कोऽपि ।। ७१ ।।

अन्वयः—कालफणी प्रकोपम् कुर्वन् । दिने सन्निधानम् समागच्छति । निपीतमोहासवजातमादः (उन्मादः) । कः अपि भीतिम् न आयाति ।। ७१ ।।

अन्वयार्थ—काल रूपी सर्प क्रोध करता हुआ । दिन-दिन पास चला आता है । मोहमयी मदिरा को पीकर मत्त (हो रहे हैं इससे) । कोई भी भय को नहीं प्राप्त होता है ।। ७१ ।।

भावार्थ—"क्रुद्ध काले सर्प के समान भयंकर काल नित्य-नित्य पास चला आता है" । इतना समझते हैं तो भी अज्ञान-रूपी मदिरा के नशे में सब मत्त हो रहे हैं—हम शीघ्र ही मरेंगे—इस कारण कोई भी यह भय नहीं करता ।। ७१ ।।

प्रतिप्रभातं पशुवित्तपुत्र-
कलत्रचिन्ताव्यथितान्तरालाः ।
आस्वापकालं परितो भ्रमन्तो
मोघं वयः संक्षपयन्त्यशेषम् ।। ७२ ।।

अन्वयः—प्रतिप्रभातम् पशुवित्तपुत्रकलत्रचिन्ताव्यथितान्तरालाः । आस्वापकालम् परितः भ्रमन्तः । मोघम् अशेषम् वयः संक्षपयन्ति ।। ७२ ।।

अन्वयार्थ—प्रति दिन सबेरे से पशु, धन, सन्तान और स्त्री की चिन्ता में जिनका मन दुःखी हो रहा है । (वे भी) शयन काल तक चारों ओर भ्रमण करते-करते । व्यर्थ सब आयु को खो देते हैं ।। ७२ ।।

भावार्थ—देखो प्रायः सब मनुष्य सबेरे से स्त्री, पुत्र, धन, पशु इनकी चिन्ता में मग्न हो शयन समय तक इधर उधर घूमते-घूमते चिन्ता में ही व्यर्थ अपनी सब आयु को खो देते हैं ।। ७२ ।।

प्रायः प्रयाणावसरावबोधः
सुदुःशकः संवृतचेतनानाम् ।
कथञ्चिदाप्यापि तमीश्वरं न
स्मरन्ति किन्तु स्मरकाङ्क्षितानि ।। ७३ ।।

अन्वयः—संवृतचेतनानाम् प्रयाणावसरावबोधः । प्रायः सुदुःशकः । कथञ्चित् तम् आप्यापि । ईश्वरम् न स्मरन्ति । किन्तु स्मरकाङ्क्षितानि (स्मरन्ति) ।। ७३ ।।

अन्वयार्थ—अज्ञान से आवृत चित्त मनुष्य को मरण समय का ज्ञान । प्रायः नहीं हो सकता । किसी प्रकार उस (ज्ञान) को पाया भी तो । उस ईश्वर का स्मरण नहीं करते । किन्तु काम अवस्था में जिन विषय की चिन्ता होती है उनको स्मरण करते हैं ।। ७३ ।।

भावार्थ– आज कल प्रायः सबका चित्त अज्ञान से आवृत है—इससे अब हम मरेंगे—यह ज्ञान किसी को नहीं होता । यदि राजयक्ष्मा (तपेदिक) आदि असाध्य रोगों के कारण या अतिवृद्धावस्था के कारण मरने का समय समीप है यह ज्ञान हुआ तो भी लोग उस समय ईश्वर का स्मरण नहीं करते वरन् उन्हीं बातों का स्मरण करते हैं जिनकी इच्छा कामदेव के समय में होती है ।। ७३ ।।

तस्माद् वृथा भवतु मा द्विजदेहलाभो-
द्योगः कृतोऽन्यजनुषीति विहाय सर्वम् ।
गेहादिकं सपदि दुःखदवानलार्चिः
शान्तिप्रदेशचरणाम्बुजमाश्रयेयम् ।। ७४ ।।

अन्वयः—तस्माद् अन्यजनुषि कृतः । द्विजदेहलाभोद्योगः वृथा मा भवतु । इति सर्वम् गेहादिकम् सपदि विहाय । दुःख-दवानलार्चिः शान्तिप्रदेशचरणाम्बुजम् (अहम्) आश्रयेयम् ।।७४।।

अन्वयार्थ—इस कारण पूर्वजन्म में किया गया । ब्राह्मण देह पाने के लिए जो उद्यम था वह वृथा न हो । इसलिए सब गृह आदि को एकबारगी छोड़ कर । दुःखरूपी दावानल की ज्वाला के शान्त करने वाले परमेश्वर के चरण कमलों का (हम) आश्रयण करें । (यह स्वामीजी ने निश्चय किया) ।। ७४ ।।

भावार्थ—इस कारण दूसरे जन्म में किया गया जो ब्राह्मण शरीर मिलने का उद्यम है वह वृथा न हो । इसलिए घर, स्त्री, पुत्र, धन आदि सब वस्तुओं को एक साथ छोड़ कर दुःखरूपी दावानल की ज्वाला को शान्त करने वाले परमेश्वर के चरण कमलों का हम आश्रयण लेवें—उक्त स्वामी जी ने ऐसा निश्चय किया ।। ७४ ।।

इत्थं विचिन्त्य परमात्मनि षण्णवृत्तिः
सङ्कल्पकल्पनमशेषमपोह्य दूरम् ।
हेलां दधावखिलकर्मविपाकभेद-
श्रेणीनिबद्धसुतवित्तकलत्रवर्गे ॥ ७५ ॥

अन्वयः—इत्थम् विचिन्त्य । अशेषम् सङ्कल्प कल्पनम् दूरम् अपोह्य । परमात्मनि षण्णवृत्तिः । अखिलकर्मविपाकभेदश्रेणी-निबद्धसुतवित्तकलत्रवर्गे हेलाम् दधौ ॥ ७५ ॥

अन्वयार्थ—ऐसा विचार कर । मन की सब कल्पनाओं को दूर फेंक कर । परमात्मा में अन्तःकरण को लगाकर । और नाना प्रकार के कर्मों के जो अनेक फल हैं, उनके परिणाम रूप जो पुत्र, धन, स्त्री आदि हैं—उनमें अनादर बुद्धि उन्होंने धारण की ॥ ७५ ॥

भावार्थ—ऐसा विचार कर मन के सङ्कल्परूप कर्म को त्याग कर परमात्मा में चित्त की वृत्ति को लगाया और नाना प्रकार के कर्मों के फल-रूप जो पुत्र, धन, स्त्री आदि हैं—उनमें अनादर किया । अर्थात् इनकी ओर से चित्त को हटा लिया ॥ ७५ ॥

विहाय तस्मिन् समयेऽखिलं तद्
विनिर्गतः प्रत्यगुपेतचेताः ।
यदृच्छयैवोज्जयिनीं जगाम
पुरीं महाकालमहेश्वरस्य ।। ७६ ।।

अन्वयः—प्रत्यगुपेतचेताः तस्मिन् समये । अखिलम् तद् विहाय विनिर्गतः । यदृच्छया एव महाकालस्य महेश्वरस्य । पुरीम् उज्जयिनीम् जगाम ।। ७६ ।।

अन्वयार्थ—परमेश्वर में लग्न चित्त (यतीन्द्रजी) उस समय में । उस घर बार सब को छोड़ कर चल दिये । दैव की इच्छा ही से महाकाल महादेव की । पुरो उज्जयिनो को आए ।। ७६ ।।

भावार्थ—परब्रह्मानुरागी उक्त महात्मा जी उस समय घर, स्त्री, पुत्र आदि सब को छोड़ कर अर्थात् विरक्त हो घर से निकल पड़े और दैव की इच्छा से महाकालेश्वर महादेव जी की पुरी उज्जयिनी को गए ।। ७६ ।।

कञ्चित् कालं हृत्सरोजान्तरस्थं
ध्यायन्नीशं शान्तचित्तः स तत्र ।
ग्रन्थांस्तांस्तान् योगवीथीप्रकाशान्
साध्वभ्यास्यत् प्राप्तबोधौचितीकान् ।। ७७ ।।

अन्वयः—शान्तचित्तः स तत्र कञ्चित् कालम् । हृत्सरोजान्तरस्थम् ईशम् ध्यायन् । प्राप्तबोधौचितीकान् योगवीथीप्रकाशान् । तान् तान् ग्रन्थान् साधु अभ्यास्यत् ।। ७७ ।।

अन्वयार्थ—स्थिर चित्त उस (योगीन्द्र) ने उज्जैन में कुछ काल तक । हृदय कमल के बीच में स्थित ईश्वर का ध्यान करते-करते । बोध के प्राप्त कराने वाले और योग-मार्गों को प्रकाशित करने वाले । उन-उन ग्रन्थों का भली भाँति अभ्यास किया ।। ७७ ।।

भावार्थ—शान्तमन योगीन्द्र महाराज ने उज्जैन में कुछ काल तक अपने हृदय-कमल के मध्य में ईश्वर का ध्यान करते हुए, जिन ग्रन्थों का पढ़ना-जानना उचित था उन योग-मार्ग के प्रकाशित करने वाले ग्रन्थों का अच्छे प्रकार से अभ्यास किया ।। ७७ ।।

अनन्तरं द्वारवतीमगच्छद् या गोपवेषस्य हरेर्बभूव ।
वैकुण्ठगोलोकयुगाधिराजत्स्तम्भोल्लसद् गोपुरराजधानी।।७८।।

अन्वयः—अनन्तरम् । या गोपवेषस्य हरेः । वैकुण्ठ-गोलोकयुगाधिराजत् स्तम्भोल्लसद् गोपुरराजधानी बभूव (ताम्) द्वारवतीम् अगच्छत् ।। ७८ ।।

अन्वयार्थ—उसके अनन्तर। जो गोपवेषधारी (श्री कृष्णचन्द्र) हरि की। वैकुण्ठ और गोलोक इन दोनों सर्वोत्तम खम्भों से प्रकाशमान है पुरद्वार जिसमें ऐसी राजधानी थी। (उस) द्वारिका पुरी में पहुँच गए ।। ७८ ।।

भावार्थ—उसके अनन्तर द्वारिकापुरी को गए जो गोपवेष श्रीकृष्ण चन्द्र जी की राजधानी थी और जिसमें वैकुण्ठ और गोलोक—ये दोनों, पुर द्वार के स्तम्भ से मालूम पड़ते थे ।। ७८ ।।

तीर्थोचितं तत्र विधाय कार्य-
जातं पुनर्गुर्जरमालवादीन् ।
देशानटन् तत् तदुपेतपुण्य-
क्षेत्रं यथाशास्त्रमशिश्रियत् सः ।। ७९ ।।

अन्वयः—तत्र सः तीर्थोचितम् कार्यजातम् विधाय । पुनः गुर्जरमालवादीन् देशान् अटन् । तद् तद् उपेतपुण्यक्षेत्रम् यथा-शास्त्रम् अशिश्रियत् ।। ७९ ।।

अन्वयार्थ—वहाँ पर उन्होंने तीर्थोचित्त कर्मों को करके । फिर गुज-रात मालवा आदि देशों में घूमते-घूमते । उन उन (देशों में) प्राप्त पवित्र स्थानों का शास्त्र के अनुसार सेवन किया ।। ७९ ।।

भावार्थ—द्वारिका जी में महाराज यतीन्द्र जी ने तीर्थोचित देव-पितृ-पूजन आदि कर्मों को करके, फिर गुजरात और मालवा आदि देशों में घूमते-घूमते मार्ग में मिले तीर्थों का शास्त्रविधि के अनुसार सेवन किया ।। ७९ ।।

वेदान्ताभ्यासमातन्वन् तीर्थयात्रां दधत् तथा ।
मूर्त्तः समुच्चय इव बभौ स ज्ञानकर्म्मणोः ।। ८० ।।

अन्वयः—स: वेदान्ताभ्यासम् आतन्वन् तथा तीर्थयात्राम् दधत् । ज्ञानकर्मणोः मूर्त्तः समुच्चय इव बभौ ।। ८० ।।

अन्वयार्थ—वह (महात्मा) वेदान्त में अभ्यास को बढ़ाते हुए और तीर्थयात्रा को करते हुए । ज्ञान और कर्म की समुचित एक मूर्त्ति के समान शोभित होते थे ।। ८० ।।

भावार्थ— वह यतीन्द्रजी महाराज वेदान्त के अभ्यास में तत्पर होकर भी तीर्थयात्रा को विधिपूर्वक करते थे । इससे ऐसा मालूम पड़ता था मानो ज्ञान ओर कर्म दोनों को संमिलित मूर्त्तिमान अवतारथ हैं । कारण इसका यह है कि मीमांसक कहते हैं कि विधिवत् कर्म करने ही से अन्त में मुक्ति मिल सकती है । और वेंदान्ती कहते हैं कि यह नहीं है—केवल ज्ञान ही से मुक्ति मिलती है । कर्म-ज्ञान के साधन मात्र हो सकते हैं । इन दोनों के कठिन युक्ति वाले विवादों को न सहकर मानो ज्ञान और कर्म ने आपस में एक हो उक्त स्वामी जी का अवतार धारण किया है ।। ८० ।।

अथायमागात् पुनरेव पुण्यां
पुरीं महाकालसमाश्रिता ताम् ।
विचारनिर्धूततमोरजस्क-
स्तुर्याश्रमं धारयितुं तदैच्छत् ।। ८१ ।।

अन्वयः—अथ अयम् महाकालसमाश्रिताम् ताम् । पुण्याम् पुरीम् पुनः एव आगात् । तदा विचारनिर्द्धूततमोरजस्कः (सः) । तुर्याश्रमम् धारयितुम् ऐच्छत् ।। ८१ ।।

अन्वयार्थ— तदनंतर यतीन्द्र जी महाकाल महादेव की उस । पुण्य पुरी को फिर भी गए । तब (वेदान्त) विचार से तमोगुण-रजोगुण-रहित यतीन्द्र ने । चौथे आश्रम के धारण करने की इच्छा की ।। ८१ ।।

भावार्थ—अनन्तर यतीन्द्र जी महाराज तीर्थों में घूमते-घूमते महा-कालेश्वर महादेव जी की उसी पवित्र नगरी में फिर आए। और तब बहुत काल तक विचार करके रजोगुण-तमोगुण-रहित अर्थात् शुद्ध सत्त्व-मूर्त्ति अति वैराग्यवान् उस महात्मा ने संन्यास आश्रम धारण करने की इच्छा की ।। ८१ ।।

बभूव पूर्वं नियमव्रताढ्य-
स्ततो गृहस्थाश्रममप्यधार्षीत् ।
तीर्थाश्रयाज्जातवनस्थकृत्योऽ-
जानात् स कालं ह्यनुरूपमस्य ॥८२॥

अन्वयः—पूर्वम् नियमव्रताढ्यः बभूव । ततः गृहस्थाश्रमम् अपि अधार्षीत् । तीर्थाश्रयात् जातवनस्थकृत्यः सः । कालम् अस्य अनुरूपम् अजानात् ॥ ८२ ॥

अन्वयार्थ—पहिले वेद के व्रत से युक्त हुए । उपरान्त गृहस्थ आश्रम को भी धारण किया । तीर्थों के सेवन से वानप्रस्थ आश्रम का कार्य पूरा कर उक्त महात्मा ने । (अब शेष) समय को संन्यास के ही योग्य समझा ॥ ८२ ॥

भावार्थ—विचार करने से मालूम होता है कि उक्त महात्मा जी द्वारा तीनों आश्रमोंका यथोचित सेवन किया गया । यज्ञोपवीत के अनन्तर वेद-वेदाङ्ग पढ़ने के समय ब्रह्मचर्य आश्रम और विवाह समय से गृहस्थाश्रम और तीर्थयात्रा के बहाने से वानप्रस्थ आश्रम का यथाविधि सेवन किया गया । इस कारण उक्त महाराज ने शेष समय को संन्यास धर्म के योग्य समझा ॥ ८२ ॥

सप्तविंशतिवर्षमात्रवयस्क एष विदग्रणी-
रात्मचिन्तनरागयुग् विषयान् नितान्तविरागवान् ।
धूतवारुणशाक्रवैधनिकेतसौख्यकुवासनः
न्यासमेव समाश्रयत् फलमेष एव हि जन्मनः ॥८३॥

अन्वयः—सप्तविंशतिवर्षमात्रवयस्कः आत्मचिन्तनरागयुक् । विषयात् नितान्तविरागवान् । धूतवारुणशाक्रवैधनिकेतसौख्य-कुवासनः विदग्रणीः एषः । न्यासम् एव समाश्रयत् । हि जन्मनः एषः एव फलम् ॥ ८३ ॥

अन्वयार्थ—सत्ताईस वर्ष की अवस्था वाले, आत्म-विचार के प्रेमी, । विषय से अत्यन्त वैराग्य करने वाले और वरुण-लोक, इन्द्र-लोक और ब्रह्म-लोक के सुख की बुरी वासना जिनको नहीं है ऐसे विद्वानों के मुखिया इस महात्मा ने । संन्यास को ही धारण किया । क्योंकि जन्म का यही फल है ॥ ८३ ॥

भावार्थ—सत्ताईस वर्षको अवस्था में आत्म-विचार में ही इनकी प्रीति थी । इसी से इन्द्रियों के विषयों से अत्यन्त वैराग्य था और इन्द्र-लोक, वरुण-लोक और ब्रह्म-लोक के सुखको इच्छारूपी बुरी वासना जिनको नहीं थी ऐसे महात्मा-श्रेष्ठ विद्वान् ने संन्यास को धारण किया । क्योंकि मनुष्य जन्म का यही उत्तम फल है ॥ ८३ ॥

नवयौवनं बलवद् वपुः कमनीयरुग् गुणिगण्यता
तरुणी रतिप्रतिमा सुतः शशिनः सदृक् किमियं कृतिः।
इति तस्य कोऽपि निवारणक्षमतामितो न वपुर्द्धर-
स्तमसो हि विद्धि बलं कियद् रवितेजसः पुरतो भवेत् ॥८४॥

अन्वयः—नवयौवनम्, बलवद् वपुः, कमनीयरुक् गुणि-गण्यता। रतिप्रतिमा तरुणी, शशिनः सदृक् सुतः (एतेसु सत्सु)। इयम् कृतिः किम् इति कः अपि वपुर्द्धरः। तस्य निवारणक्षम-ताम् न इतः। हि रवितेजसः पुरतः तमसः बलम् क्रियद् भवेत् इति विद्धि ॥ ८४ ॥

अन्वयार्थ—नई जवानी, बलवान् शरीर, सुन्दर कान्ति, गुणियों में गिने जाना। रति के समान स्त्री और चन्द्रमा के समान पुत्र (इनके रहते)। यह काम क्यों (करते हो) इस प्रकार कोई भी देहधारी। उनके रोकने में समर्थ न हुआ। क्योंकि सूर्य के तेज के आगे अन्धेरा का बल कितना हो सकता है इसे विचार लो ॥ ८४ ॥

भावार्थ—फिर उस काल में कोई मनुष्य इस बात के कहने में भी समर्थ न हुआ कि "ऐसी नवीन यौवनावस्था, बलवान् शरीर, सुन्दर कान्ति, गुणियों में मुख्य गिना जाना, रति के समान सुन्दर स्त्री और चन्द्रमा के समान सुन्दर पुत्र—इन सबके रहते हुए भी आप यह क्या कर रहे हैं।" क्योंकि अन्धकार का बल ही कितना है जो सूर्यनारायण के समान हो सके अर्थात् यह सब कहना तमोगुणियों के लिए है। सत्त्वगुण के प्रकाश के सामने इन तमोगुणियों का कुछ चल नहीं सकता ॥ ८४ ॥

रविमण्डलं निजभेदभीचलनं बिभर्ति तदा स्म नो
हविरस्तमेत्य शचीपतिश्च न शोचति स्म परागदृशा ।
अभयप्रदानविलासिना जगदीशतां गमितात्मना-
ऽप्यमुना भयं कथमुद्भवेन् न हि पुण्यमस्ति ततः परम् ।।८५।।

अन्वयः—तदा रविमण्डलम् निजभेदभीचलनम् नो बिभर्ति स्म । शचीपतिश्च हविः अस्तम् एत्य न शोचति स्म । अभय-प्रदानविलासिना परागदृशा जगदीशताम् गमितात्मना अपि अमुना भयम् कथम् उद् भवेत् । हि ततः परम् पुण्यम् न अस्ति ।। ८५ ।।

अन्वयार्थ—तब सूर्य मण्डल ने अपने बिध जाने के भय से कम्पन को धारण नहीं किया । और इन्द्राणी के पति ने भी आहुति नष्ट होती है—यह समझ अफसोस न किया । अभयदान को देने वाले और बहुत समय से ईश्वर का ध्यान करते-करते जगत् के स्वामित्व तक उनकी आत्मा पहुँच गयी ऐसे से डर क्यों हो सकता है । क्योंकि इस से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है ।। ८५ ।।

भावार्थ—संन्यास धर्म को ग्रहण करते ब्राह्मण को देख सूर्य-मण्डल इस भय से कांपने लगता है कि यह अन्त में हमको वेध करके (और ऊपर) चला जायगा । और इन्द्र देवता को भी चिन्ता होती है कि हमारी आहुति के देने वाले कम हुए जाते हैं । परन्तु यतीन्द्र जी महाराज के संन्यास लेने के समय न सूर्यमण्डल अपने वेध की डर से कांपा न आहुति की कमी की इन्द्र को चिन्ता हुई, क्योंकि उक्त महाराज अभयदान को देने वाले थे और बहुत काल से ईश्वर का ध्यान करते-करते जगत् के रक्षक परमात्मा के स्वरूप हो गए थे । उनसे किसी को क्यों भय होगा ? कारण यह है कि कोई-कोई पुण्य शुक्ल-कृष्ण दोनों रूप वाला होता है उससे किसी-किसी जीव को क्लेश भी प्राप्त होता है—जैसे अश्वमेध आदि यज्ञ है । और जो पुण्य शुद्ध सत्त्व रूप है—जैसे सर्वभूत का अभयदान, निष्काम परमेश्वर का ध्यान आदि—इन पुण्यों से किसी को

भय नहीं होता है। इसका यह आशय है कि वही संन्यासी (योगी) सूर्य-मण्डल का भेद करके और ऊँचे लोक जाते हैं जिनके आत्मा में परिच्छिन्नत्व का अध्यास (ख्याल) बना है अर्थात् जिनकी आत्मा लिङ्गशरीर से युक्त है और सर्वव्यापक नहीं हुआ है—केवल निष्काम उपासना से योगाभ्यास से योग्यतामात्र प्राप्त हो गई है और जिन संन्यासियों को अखण्ड परमेश्वर के साक्षात्कार हो जाने से अद्वितीय, सर्वव्यापी, सच्चिदानन्द-रूप अपनी आत्मा हो गई है—उनके लिए तो कोटि-कोटि सूर्यमण्डल और ब्रह्माण्ड अपने आत्मस्वरूप हैं, अपनेसे भिन्न नहीं हैं। ये संन्यासी सूर्यमण्डल का भेद क्या करेंगे अर्थात् नहीं करते। इस कारण सूर्यमण्डल न कांपा। और ऐसे परमात्मास्वरूप से इन्द्रको भी अपने लिए आहुतिहानि की चिन्ता नहुई। क्योंकि परमात्मा की ही सत्ता से सब होम करने वाले स्थित हैं। बिना सत्ता एक क्षण में नष्ट हो जांय। जिनकी सत्ता मात्र से करोड़ों होम करने वाले उत्पन्न होते हैं उनके एक देह के संन्यास धारण करने से इन्द्र को भी आहुतिहानि की चिन्ता नहीं हुई। इससे बढ़ कर और कोई पुण्य भी नहीं है ॥ ८५ ॥

पूर्वाश्रमेणाथ सहैव पूर्वं सन्त्यज्य नाम स्मृतये जनानाम् ।
नामाद्यगम्योऽपि बभूव नाम्ना श्रीभास्करानन्दसरस्वतीति ।८६।

अन्वयः—अथ पूर्वाश्रमेण एव सह पूर्वम् नाम सन्त्यज्य । नामाद्यगम्यः अपि जनानाम् स्मृतये । नाम्ना श्रीभास्करानन्द सरस्वती इति बभूव ॥ ८६ ॥

अन्वयार्थ—उपरान्त पूर्व आश्रम के साथ ही (पिता द्वारा दिए गए) पहिले नाम को त्याग कर। यद्यपि नाम आदि की पहुँच के बाहर थे तथापि जनों के स्मरण (ज्ञान) के लिए नाम से श्री भास्करानन्दसरस्वती हुए ॥ ८६ ॥

भावार्थ—संन्यास आश्रम के धारण करने के समय में पहिले आश्रम के साथ ही प्रथम (घर का) नामको भी त्यागकर दिया। यद्यपि उक्त योगीश्वर महाराज तुरीय अवस्था के प्राप्त होने से नाम आदि अर्थात् वाणी और मन की पहुँच के बाहर हो गए थे तथापि अपने भक्त जन—नाम का स्मरण कर कल्याण को पाएँ इसलिए श्री भास्करानन्द सरस्वती ने इस नाम को धारण किया ॥ ८६ ॥

यतिरस्मिन् वासं सुखेन तनुकालमकृत रेवायाः ।
परिसरगे सुस्थाने विदितशिवनिजात्मतादात्म्यः ।।८७।।

अन्वयः—विदितशिवनिजात्मतादात्म्यः अयम् यतिः । रेवायाः परिसरगे अस्मिन् सुस्थाने । सुखेन तनुकालम् वासम् अकृत ।। ८७ ।।

अन्वयार्थ—महादेव जी से अपने आत्मा को अभिन्न जानने वाले यतीन्द्रजी ने रेवा नदी के पास इस सुन्दर स्थान में। सुख से थोड़े समय तक वास किया ।। ८७ ।।

भावार्थ—शिव से और अपनी आत्मा से भेद नहीं है—यह ज्ञान जिनको हो गया है ऐसे इस यतीन्द्र महाराज ने रेवा नदी के पास नगरी में सुख से थोड़े दिनों तक वास किया ।। ८७ ।।

निरवधिमहिम स्थानं यत् काशीति श्रुतौ गीतम् ।
तत्राथागात् विद्वान् स यतिः स्मरणीयसच्चरितः ।।८८।।

अन्वयः—अथ स्मरणीयसच्चरितः विद्वान् स यतिः । श्रुतौ निरवधिमहिम गीतम् । यत् काशी इति स्थानम् तत्र अगात् ॥ ८८ ॥

अन्वयार्थ—इसके अनंतर स्मरण करने योग्य उत्तम चरित्र वाले विद्वान् वह यतीन्द्र जी—वेद में अनन्त महिमा कही गई है जिसकी । उस काशी स्थान में आए ।। ८८ ।।

भावार्थ—इसके अनंतर जिनके पुण्य चरित्र स्मरण का करने योग्य हैं वे विद्वान् यतीन्द्र जी जिस स्थान को वेद ने अतुल महिमा वाला कहा है उस काशी नाम स्थान में आए ।। ८८ ।।

निवासमत्र किञ्चिदेव संविधाय सोऽव्रजत्
फतेपुराख्यपत्तनान्तरालगाऽसनीपुरम् ।
परात्मचिन्तनान्तरायतामवेक्ष्य जाह्नवीतटे
च दण्डसञ्ज्ञकं स्वलक्षणं तदा जहौ ।।८९।।

अन्वयः—स अत्र किञ्चिद् एव निवासम् संविधाय । फतेपुराख्यपत्तनान्तरालगाऽसनीपुरम् अव्रजत् । तदा परात्मचिन्तनान्तरायतामवेक्ष्य । दण्डसञ्ज्ञकम् स्वलक्षणम् जाह्नवीतटे जहौ च ।। ८९ ।।

अन्वयार्थ—यतीन्द्र जी यहाँ कुछ दिन वास करके। फतहपुर नगर के असनी पुर गाँव को गए। वहाँ परमात्मा के ध्यान में विघ्नकारी है यह देख। दण्ड नाम के अपने चिन्ह को गङ्गा तट पर त्याग दिया ।। ८९ ।।

भावार्थ—इस यात्रा में यतीन्द्र महाराज काशी जी में थोड़े दिन वास कर जिला फहतपुर के असनीपुर गाँव में आए। वहाँ दण्ड के धारण करने में बहुत सी क्रिया करनी पड़ती है, जिससे परमात्मा के ध्यान में विच्छेद होता है—यह विचारकर अपने दंडी संन्यासी के चिह्न, दण्ड को भी गङ्गाजी के किनारे पर त्याग दिया ।। ८९ ।।

मूर्द्धा यस्य निरूप्यते श्रुतिगणैर्द्यौर्वह्निरास्यं दृशौ
सूर्याचन्द्रमसौ च खं निगदितं नाभिः पदे भूरियम् ।
तस्येशस्य परं महो हृदि दधत् सम्पावनं देहिनां
तस्मात् कान्हपुरं स्वतन्त्रगतिकः सम्प्राप्तवान् युक्तधीः ॥९०॥

अन्वयः—श्रुतिगणैः द्यौः यस्य मूर्द्धा निरूप्यते । वह्निः आस्यम्, सूर्याचन्द्रमसौ च दृशौ । खम् नाभिः निगदितम् । इयम् भूः पदे (निगदिते) । तस्य ईशस्य देहिनाम् सम्पावनम् परम् महः हृदि दधत् । स्वतन्त्रगतिकः युक्तधीः (सः) तस्मात् कानपुरम् प्राप्तवान् ॥ ९० ॥

अन्वयार्थ—वेदों ने स्वर्ग को जिसका मस्तक कहा है । अग्नि को मुख और सूर्य-चन्द्रमा को नेत्र कहा है । आकाश को नाभि और इस पृथिवी को चरण कहा है । उस परमेश्वर के देहधारियों के पवित्र करने वाले उत्कृष्ठ तेज को हृदय में धारण करते हुए । स्वेच्छाचारी युक्तिबुद्धि यतीन्द्र जी वहाँ से कानपुर को पहुँचे ॥ ९० ॥

भावार्थ—वेदों ने स्वर्गलोक को जिस परमेश्वर के मस्तक रूप में वर्णन किया गया है । इसी प्रकार अग्नि को मुख, सूर्य—चन्द्रमा को दोनों नेत्र, आकाश को नाभि और पृथिवी को चरण कहा गया है—उस ईश्वर के जगत् पावन उत्कृष्ट तेज का हृदय में ध्यान करते हुए, स्वेच्छाचारी, युक्तिबुद्धि यतीन्द्रजी असनीपुर से कानपुर आये ॥ ९० ॥

तत्र कान्यकुब्जवंशसम्भवो महीसुरो
रामचरन् नामकः[1] समागतं गतोऽमुना ।
सेवतेऽस्य योऽनिशं तदादि पादपङ्कजं
त्यक्तदेवतान्तरं महीभृतां कथैव का ।।९१।।

अन्वयः—तत्र कान्यकुब्जवंशसम्भवः रामचरन् नामकः । महीसुरः अमुना समागमम् गतः य तदादि अस्य पादपङ्कजम् त्यक्तदेवतान्तरम् अनिशम् सेवते । महीभृताम् कथा एव का ।। ९१ ।।

अन्वयार्थ—कानपुर स्थान में कान्यकुब्ज कुल में उत्पन्न रामचरन् नाम के ब्राह्मण योगीन्द्र जी के साथ समागम को प्राप्त हुए। जो तब से योगीन्द्र जी के चरणकमल को–दूसरे देवताओं को छोड़–नित्य सेवा करते हैं। और अन्य राजाओं की कथा ही क्या ।। ९१ ।।

भावार्थ—उस कानपुर स्थान में कान्यकुब्जों के कुल में उत्पन्न रामचरण नाम के ब्राह्मण उक्त स्वामी जी के चरणों में प्राप्त हुए। रामचरण जी तब से लेकर आज तक यतीन्द्र जी के चरण-कमलों की सेवा करते जाते हैं। उस रामचरण जी ने और देवताओं की सेवा से यतीन्द्र जी की सेवा को उत्तम समझ देवताओं का आसरा छोड़ दिया है, उनके आगे और राजाओं की गिनती ही क्या अर्थात् कुछ नहीं है ।। ९१ ।।

---

१ 'रामचरन्' इति तत्पित्रोरुच्चरितानुकरणमेतदिति साधुः ।।

गयादत्तनामा स लब्धप्रतिष्ठोऽस्य
पादाम्बुजे जातभक्तिस्तत्र ।
स ताभ्यां सहैव प्रयातः स्वजन्मस्थलीं
तां विलोक्यैव भूयो निवृत्तः ॥९२॥

अन्वयः—तत्र च लब्धप्रतिष्ठः सः गयादत्तनामा । अस्य पादाम्बुजे जातभक्तिः सः ताभ्याम् सहैव स्वजन्मस्थलीम् प्रयातः । ताम् विलोक्य एव भूयः निवृत्तः ॥ ९२ ॥

अन्वयार्थ—वहाँ पर एक प्रतिष्ठित पुरुष गयादत्त को । भी महाराज यतीन्द्र जी के चरण-कमलों में भक्ति उत्पन्न हुई । यतीन्द्र जी उन दोनों के साथ अपनी जन्म भूमि को आए । उस जन्मभूमि का दर्शन मात्र करके फिर लौट गए ॥ ९२ ॥

भावार्थ—उसी प्रकार कानपुर में एक प्रतिष्ठित पुरुष गयादत्त (खत्री) भी यतीन्द्र महाराज के चरणकमलों में भक्ति करने लगे । इन दोनों सेवकों को साथ लेकर श्री स्वामी जी महाराज अपनी जन्म-भूमि को गए । और जन्म भूमि का दर्शन करके शीघ्र ही वहाँ से चल खड़े हुए ॥ ९२ ॥

कौपीनं स च केवलं यतिपतिर्बिभ्रद् द्युनद्यास्तटे
ध्यायञ् ज्योतिरखण्डमाद्यमनघं तत् सूर्यकोटिप्रभम् ।
दूरत्यक्तसमस्तचाटुकटुको वर्षातपादिष्वपि
च्छायामप्यनुपाश्रयन् सुविचरन् कालं व्यनैषीच्चिरम् ।।९३।।

अन्वयः—दूरत्यक्तसमस्तचाटुकटुकः । केवलःकौपीनं बिभ्रत् स यतिपतिः वर्षातपादिष्वपि छायाम् अपि अनुपाश्रयन् । द्युनद्यास्तटे सुविचरन् अखण्ढम् आद्यम् अनघम् सूर्यंकोटिप्रभम् तत् ज्योतिः ध्यायन् च । चिरम् कालम् व्यनैषीत् ।। ९३ ।।

अन्वयार्थ—प्रिय-अप्रिय भाषण के त्यागी । कौपीनमात्रधारी उस यतीन्द्रजी ने । वर्षा, गर्मी, शीत, कालमें भी छायाका आसरा छोड़, गङ्गा तट में विचरते और अखण्ड, सबके आदि, निर्मल, कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान उस ज्योति का ध्यान करते (हुए) । बहुत काल को व्यतीत किया ।। ९३ ।।

भावार्थ—मीठे-कडुए वचनों के (प्रभाव के) त्यागी कौपीन मात्रधारी उस यतीन्द्र महाराज ने जाड़ा, गर्मी, वर्षा में भी छाता आदि की छाया का आसरा छोड़ गङ्गा-तट में भ्रमण करते और अखण्ड, सर्वं के आदि, निर्मल और कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान उस ज्योति का ध्यान करते-करते बहुत काल व्यतीत किया ।। ९३ ।।

एवं स तीर्थानि महीतलान्त-
गंतानि सर्वाणि ददर्श विद्वान् ।
अशेषसङ्कल्पविकल्पहीनः
क्षेत्रं हरिद्वारमथाश्रितोऽभूत् ॥९४॥

अन्वयः—अशेषसङ्कल्पविकल्पहीनः सः विद्वान् । एवम् महीतलान्तर्गतानि सर्वाणि तीर्थानि ददर्श अथ हरिद्वारम् क्षेत्रम् आश्रितः अभूत् ॥ ९४ ॥

अन्वयार्थ—सब सङ्कल्प और विकल्प से रहित उस विद्वान् ने । इसी प्रकार से पृथिवी मण्डल के सब तीर्थों का दर्शन किया । उपरान्त हरिद्वार क्षेत्र का सेवन किया ॥ ९४ ॥

भावार्थ—सङ्कल्प करना और विकल्प करना—इन दोनों से रहित उस विद्वान् यतीन्द्र ने इसी प्रकार से अर्थात् गर्मी और वर्षा आदि में भी छाया के आसरे को छोड़ कर पृथिवी-मण्डल के सब तीर्थों की यात्रा की । तदनन्तर हरिद्वार में आकर कुछ दिन वास किया ॥ ९४ ॥

तत्र पाटलिपुत्रान्तराघोपुरनिवासवान् ।
अनन्तरामनामासीच्छाकद्वीपी द्विजः सुवित् ।।९५।।

अन्वयः—तत्र पाटलिपुत्रान्तराघोपुरनिवासवान् । सुवित् शाकद्वीपी द्विजः अनन्तरामनामा आसीत् ।। ९५ ।।

अन्वयार्थं—वहाँ पटना जिला के राघोपुर ग्राम निवासी। एक विद्वान् शाकद्वीपी ब्राह्मण अनन्तराम नाम के रहते थे ।। ९५ ।।

भावार्थ—उस हरिद्वार तीर्थ में पटना ज़िला के राघोपुर गाँव निवासी एक बड़े विद्वान् शाकद्वीपी ब्राह्मग अनन्तराम नाम के रहते थे ।। ९५ ।।

तस्मादधीतवांस्तत्र प्रस्थानत्रितयीमयम् ।
निगूहन्ति सदात्मानं ज्ञानिनो बहुचेष्टितैः ॥९६॥

अन्वयः—तत्र अयम् तस्मात् प्रस्थानत्रितयीम् अधीतवान् । ज्ञानिनः सदा आत्मानम् बहुचेष्टितैः निगूहन्ति ॥ ९६ ॥

अन्वयार्थ—वहाँ पर इन यतीन्द्र महाराज ने उस विद्वान् से प्रस्थान-त्रितयी को पढ़ा। ज्ञानी लोग सदा अपने को बहुत सी चेष्टाओं से छिपाते हैं ॥ ९६ ॥

भावार्थ—उस हरिद्वार क्षेत्र में यतीन्द्र जी महाराज ने श्री अनन्त-रामजी के मुख से शारीरकभाष्य, गीताभाष्य और उपनिषद्भाष्य नाम प्रस्थानत्रयी का अध्ययन किया। यद्यपि उक्त स्वामी जी सर्वज्ञ थे तथापि पढ़ा। इसका यह कारण जान पड़ता है कि ज्ञानी लोग सदा से अपने को अनेक उपायों से छिपाए रहते हैं। मनु जी की भी ऐसी ही आज्ञा है यथा "जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोकमाचरेत्" इति। दूसरेस्वामीजी महाराज सबको यह शिक्षा दिया चाहते थे कि (विद्या वही सफल होती है जो गुरु परम्परा से चली आती है। स्वयं पुस्तक पढ़ लेने से उत्तम-फल-दायक नहीं होती) ॥ ९६ ॥

एवं याताः प्रशमनिरतस्यास्य संवत्सरास्तु
चत्वारिंशत् पुनरपि तथा जाह्नवीतीरमार्गैः ।
ध्यायं ध्यायं सततमखिलाधीशतत्त्वं स योगी
मूर्त्तब्रह्मस्मरहरपुरीं प्राप्तवान् प्राप्त्यनीहः ।।९७।।

अन्वयः—एवम् प्रशमनिरतस्य अस्य । चत्वारिंशत् संवत्सराः तु याताः । प्राप्त्यनीहः स योगी जाह्नवीतीरमार्गैः । अखिलाधीशतत्त्वम् सततम् ध्यायम् ध्यायम् । पुनरपि मूर्त्तब्रह्मस्मरहरपुरीम् प्राप्तवान् ।। ९७ ।।

अन्वयार्थ—इस प्रकार शान्ति में तत्पर स्वामी जी का । चालीसवाँ वर्ष व्यतीत हुआ । प्राप्ति की चेष्टा से रहित योगी जी का गङ्गा किनारे-किनारे चलते हुए । परमेश्वर तत्त्व को निरन्तर ध्यान करते हुए । फिर कामदेव के शत्रु की मूर्त्तिमान् ब्रह्मस्वरूप पुरी को प्राप्त हुए ।। ९७ ।।

भावार्थ—इस प्रकार शान्त-चित्त योगीन्द्र महाराज का चालीसवाँ वर्ष पूरा हुआ । अनन्तर पूर्णकाम योगीजी गङ्गा जी के किनारे-किनारे विचरते और सर्वेश्वर तत्त्व परब्रह्म का निरन्तर ध्यान करते हुए महादेव जी की मूर्त्तिमान ब्रह्मस्वरूप काशीपुरी पुनः आ पहुंचे ।। ९७ ।।

संन्यासात् परतस्त्रयोदश समाः स प्राज्ञवर्योऽनिशं
सर्वाण्येव तपांसि दुष्कृततमान्याऽऽसेवतातिक्षमः ।
आनन्दोपवनेऽधिकाशि विदिताद् दुर्गालयात् प्राक्
स्थिते प्राप्ताऽशेषसुविज्ञकामितपदः कौपीनमप्यत्यजत्॥९८॥

अन्वयः—अतिक्षमः सः प्राज्ञवर्य्यः संन्यासात् परम् परतः । त्रयोदश समाः दुष्कृततमानि सर्वाणि एव तपांसि अनिशम् आसेवत । प्राप्ताऽशेषसुविज्ञकामितपदः । अधिकाशि विदितात् दुर्गालयात् प्राक् स्थिते । आनन्दोपवने कौपीनम् अपि अत्यजत् ॥ ९८ ॥

अन्वयार्थ—अति सहन शील, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ स्वामी जी ने संन्यास के उपरान्त । तेरह वर्ष तक सब बड़े कठिन तपों का सदा सेवन किया । उत्तम ज्ञानियों के अभिलषित पद को प्राप्त स्वामी जी ने काशी जी में प्रसिद्ध श्री दुर्गा जी के मन्दिर के पूर्व ओर स्थित । आनन्द वन में लंगोटी का भी त्याग कर दिया ॥ ९८ ॥

भावार्थ—अतिसहनशील और ज्ञानियों में श्रेष्ठ स्वामी जी ने संन्यास धारण करने के उपरान्त तेरह वर्ष तक सभी बड़े कठिन तपों का सदा सेवन किया । सब ज्ञानी लोग जिस पद की आकांक्षा करते हैं उस परमात्मा-स्वरूप लाभरूप परमहंस पद को प्राप्त स्वामी जी ने काशी जी में प्रसिद्ध, दुर्गा जी के पूर्व भाग में स्थित आनन्द बाग में कौपीन का भी त्याग कर दिया । क्योंकि निःशेष देहाभिमानत्यागपूर्वक परमात्मस्वरूप लाभरूप परमहंस पद जिनको प्राप्त है उनको कौपीन से भी कुछ प्रयोजन नहीं है । अर्थात् मनुष्य को जब यह देहाभिमान होता है कि हम पुरुष हैं या स्त्री तब वस्त्र धारण करता है । जिसने देहाभिमान को भी त्याग दिया उसे कौपीन से भी कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ९८ ॥

चत्वारिंशत्तमे वर्षे जनुषः स यतीश्वरः ।
काशिकामागतो भूयस्ततश्चात्रैव वर्तते ॥९९॥

अन्वयः—सः यतीश्वरः जनुषः चत्वारिंशत्तमे वर्षे । भूयः काशिकाम् आगतः । ततः च अत्र एव वर्तते ॥ ९९ ॥

अन्वयार्थ—उक्त यतीश्वर जी, जन्म काल से चालीसवें वर्ष में । फिर काशीपुरी को आए । तब से यहाँ ही वर्त्तमान हैं ॥ ९९ ॥

भावार्थ—वह यतीन्द्र जी महाराज अपनी चालीस वर्ष की अवस्था में दूसरो बार जब काशीपुरी में आए तब से काशी जी में ही विराजमान हैं ॥ ९९ ॥

आनन्दस्य वनं गिरीशनगरी गीता पुराविक्तमै-
रानन्दोपवनं च तत् प्रविदितं तस्या यथार्थाह्वयम् ।
मात्रां यस्य समाश्रयन्ति सकलानन्दास्तदानन्दयुक्
सानन्दं कुरुते स तत्र वसतिं श्रीभास्करानन्दवित् ।१००।

अन्वयः—पुराविक्तमैः गिरिशनगरी आनन्दस्य वनम् गीता । तस्याञ्च यथार्थाह्वयम् तत् आनन्दोपवनम् प्रविदितम् । तत्र सकलानन्दाः यस्य मात्रां समाश्रयन्ति । तदानन्दयुक् सः श्रीभास्करानन्दवित् सानन्दं वसतिम् कुरुते ।। १०० ।।

अन्वयार्थ—पुराण के जानने वालों में श्रेष्ठ व्यासजी द्वारा महादेव जी की नगरी (काशी)आनन्द का वन कही गई है । वहाँ अर्थानुसार नामधारी आनन्दवन प्रसिद्ध है। उस आनन्दबाग में सब आनन्द जिस आनन्द के एक कण से उत्पन्न हुए हैं । उस आनन्द से युक्त विद्वान् श्री भास्करानन्द जी आनन्द से वास करते हैं ।। १०० ।।

भावार्थ—पुराणाचार्यों में श्रेष्ठ, पुराकालीन विद्या-वृत्तांतों के सर्वश्रेष्ठ वेत्ता, श्रीवेदव्यास आदि ऋषियों ने महादेव जी की नगरी काशी पुरी को आनन्दकानन कहा है। उस काशी पुरी में अपने नाम को सार्थक करने वाला आनन्दवन नाम का बगीचा प्रसिद्ध है। वहाँ, जिस आनन्द के एक बिन्दु से संसार के सब आनन्द उत्पन्न होते हैं उस परम आनन्द सुख में मग्न विद्वान् श्रीभास्करानन्द जी वास कर रहे हैं ।। १०० ।।

तस्य स्तवं परमपूरुषतां गतस्य
यत् प्राणिनो विदधते किमु तत्र चित्रम् ।
आनन्दवेगपुलकायितमञ्जरोका-
स्तं भूरुहा अपि शकुन्तरुतैः स्तुवन्ति ।।१०१।।

अन्वयः—प्राणिनः परमपूरुषताम् गतस्य तस्य । स्तवम् विदधते, तत्र किमु चित्रम् । यत् आनन्दवेगपुलकायितमञ्जरीकाः भूरुहाः अपि । तम् शकुन्तरुतैः स्तुवन्ति ।। १०१ ।।

अन्वयार्थ—मनुष्य लोग परमेश्वर के सारूप्य को प्राप्त उस (यतीन्द्र जी) की । स्तुति करते हैं—तो इसमें क्या आश्चर्य है । क्योंकि आनन्द के वेग की रोमावली-समान मञ्जरी को धारण किये हुए वृक्ष भी । उनकी पक्षियों के शब्द द्वारा स्तुति करते है ।। १०१ ।।

भावार्थ—यदि परमेश्वर के सारूप्य मुक्ति को प्राप्त श्रीस्वामीजी को मनुष्य लोग स्तुति किया करते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? क्योंकि आनन्द के आवेग से मञ्जरीरूप रोमावली को धारण कर वृक्ष लोग भी पक्षियों के शब्द द्वारा उनकी स्तुति करते रहते हैं ।। १०१ ।।

तस्मिन् न केवलमयं विपिनान्तराले
ध्यानावधानहृदयेक्षितदीप्तिरस्ति ।
तच्छान्तिसंयमसमाक्रमशान्तचित्ता
आभान्ति किन्तु मुनयस्तरवोऽपि तत्र ।।१०२।।

अन्वयः—तस्मिन् विपिनान्तराले केवलम् अयम् । ध्याना-वधानहृदयेक्षितदीप्तिः न अस्ति । किन्तु तत्र तच्छान्तिसंयम-समाक्रमशान्तचित्ताः । तरवः अपि मुनयः आभान्ति ।। १०२ ।।

अन्वयार्थ—उस आनन्द वन के मध्य में केवल यतीन्द्र जी ही । ध्यान में एकाग्र चित्त से परमेश्वर ज्योति के देखने वाले हैं—यही नहीं, वरन् उस वन में यतीन्द्र जी की शान्ति और संयम के प्रताप से शान्त चित्त । वृक्ष भी मुनियों के सदृश मालूम पड़ते है ।। १०२ ।।

भावार्थ—उस आनन्द वन के बीच ध्यान में एकाग्र चित्त से हृदय में ज्योतिःस्वरूप के देखने वाले अकेले स्वामी जी हों—ऐसी बात यह नहीं है, वरन् स्वामी जी की शान्ति और संयम के प्रताप के संसर्ग से समोप के वृक्ष भी शान्त चित्त से हो गए हैं। इससे वे भी ऋषियों के सदृश मालूम पड़ते हैं ।। १०२ ।।

हंसावलीधवलधाम मनोभिरामं कामं
न तत्र कुरुते नवमल्लिकानाम् ।
सूनं न चित्रमिदमत्र विभावयन्ते
नूनं जना यदिह कामरिपोरभेदः ।।१०३।।

अन्वयः—तत्र हंसावलीधवलधाम । मनोभिरामम् नवमल्लिकानाम् सूनम् कामम् न कुरुते । जनाः अत्र इदम् चित्रम् न विभावयन्ते नूनम् । यद् इह कामरिपोः अभेदः ।। १०३ ।।

अन्वयार्थ—उस आनन्द वन में, हंसों की पङ्क्ति के समान श्वेत गृह । और मनोहर नई चमेली के फूल कामदेव के विकार को उत्पन्न नहीं करते । मनुष्य लोग यहाँ इसे आश्चर्य भी नहीं मानते । क्योंकि यहाँ कामदेव के शत्रु से अभिन्न (शंकररूप) स्वामी जी विद्यमान हैं ।। १०३ ।।

भावार्थ—उसआनन्द वनमें हंसों के पर के समान श्वेत गृह, नयीचमेली के सुन्दर फूल—किसी के चित्त में कामदेव का विकार उत्पन्न नहीं करते हैं । कोई भी मनुष्य आनन्दबाग की इस बात पर आश्चर्य ही नहीं करता । क्योंकि इस बाग में कामदेव के शत्रु शिव जी से अभिन्न अर्थात् साक्षात् शिवमूर्त्ति श्रीभास्करानन्द जी विराजमान हैं ।। १०३ ।।

विलसत् कुसुमं सुरुवच्छकुनं
प्रचलत् तरुकं प्रबलत् सुकृतम् ।
विलसन्मुनिसङ्घमनोविभवं
वनमेनमसेवत चित्रकथम् ।।१०४।।

अन्वयः—विलसत् कुसुमम् सुरुवत् शकुनम् । प्रचलत् तरुकम् प्रबलत् सुकृतम् । विलसन्मुनिसङ्घमनोविभवम् । चित्र-कथम् वनम् एनम् असेवत् ।। १०४ ।।

अन्वयार्थ—जिसमें फूल खिल रहे हैं, पक्षी लोग मधुर शब्द कर रहें हैं । वृक्ष हिल रहे हैं, सुकृत वृद्धि पर (बढ़ रही) है । मुनियों के मन की सम्पत्ति पुष्ट होती है । ऐसा अद्भुत वन भी स्वामी जी की सेवा करता है ।। १०४ ।।

भावार्थ—जिसमें सुन्दर फूल खिल रहे हैं, सुन्दर पक्षी-समूह मधुर शब्द कर रहे हैं, मंद वायु से वृक्ष हिल रहे हैं, पुण्य की निरंतर वृद्धि हो रही है और मुनियों के मनका वैभव अर्थात् समाधिसामर्थ्य पुष्ट होती जाती है—ऐसा अद्भुत आनन्दवन (आनन्दबाग) भी शिवस्वरूप स्वामी जी की सेवा करताहै ।। १०४ ।।

कुसुमे कुसुमे शकुने शकुने
क्षितिजे क्षितिजे मनुजे मनुजे ।
अवधूततमोवरजोंशचयं
रजएव विराजति तस्य पदः ।।१०५।।

अन्वयः—कुसुमे कुसुमे शकुने शकुने । क्षितिजे क्षितिजे मनुजे मनुजे । अवधूततमोंशरजोंशचयम् । तस्य पदः रजः एव विराजति ।। १०५ ।।

अन्वयार्थ—फूल-फूल में, पक्षी पक्षी में । वृक्ष-वृक्ष में, मनुष्य-मनुष्य में । तमोगुण और रजोगुण के अंशों के समूह को दूर कर देने वाली । स्वामी जी के चरण की धूलि ही विराजमान है ।। १०५ ।।

भावार्थ—उस आनन्द वन के सब फूलों में सब पक्षियों में सब वृक्षों में सब मनुष्यों में—अर्थात् सब जगह—रजोगुण-तमोगुण के अंशों की दूर करने वाली श्री स्वामी जी के चरणों की धूलि विराजमान है ।। १०५ ।।

शशिरुक् शशिरुक् कमलं कमलं
कुमुदं कुमुदं वद कम्बुरयम् ।
कुरुतामतिवक्रचयो यतिनः
स्थिरराजितसत्त्वगुणानुकृतिम् ॥१०६॥

अन्वयः—शशिरुक् शशिरुक् कमलम् कमलम् कुमुदम् कुमुदम् । तर्हि किम् अतिवक्रचयः अयम् कम्बुः । यतिनः स्थिर-राजितसत्त्वगुणाऽनुकृतिम् । कुरुताम् (नेतिशेषः) ॥ १०६ ॥

अन्वयार्थ—चन्द्रमा की कान्ति तो मृग के (चिह्न को) धारण करने वालेकी कान्ति है और कमल (क) पानी का मल है और कुईं का फूल भी कुत्सित मुद को उत्पन्न करता है। (तो क्या) अत्यन्त टेढ़ा और चलायमान यह शंख यतीन्द्र जी के स्थिर विराजमान सत्त्वगुण के सदृश हो सकता है ? (कभी नहीं) ॥ १०६ ॥

भावार्थ—स्वामी जी के अति निर्मल उज्वल सत्त्वगुण के समान ऐसी निर्मल कोई वस्तु नहीं है जिसके साथ स्वामीजी के यश की उपमा दे सके। देखिए चन्द्रमा की कान्ति उज्वल तो है पर वह शशिरुक् अर्थात् शशी की, मृगधारी की, पशु वालेकी (रुक्) चमक है (वह मृगलांछन है) और उज्वल कमल की ओर देखते हैं तो यह कमल अर्थात् क का—जल का मल है और कुमुद उज्वल कुईं के रूप की ओर देखें तो यह कु (कुत्सित) मुद (हर्ष) को देता है। टेढ़ा-मेढ़ा चलायमान यह शङ्ख भी यतीन्द्रजी के स्थिर विराजमान सत्त्वगुण के सदृशभला कभी हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता। अर्थात् स्वामी जी के सत्त्वगुणकीउपमा के लिए उक्त उज्वल तीन पदार्थ मिले वे तीनों दोषयुक्त देख पड़े। इससे ये भी उपमा देने के योग्य नहीं हैं अर्थात् स्वामी जी का सत्त्वगुण अनुपम है ॥ १०६ ॥

अगुणोऽपि गुणी न धनो क्षितिपा-
लसहस्त्रनिषेवितपादरजः ।
अपटोऽपि समस्तदिगन्तपटो-
ऽतिविचित्रचरित्रविभूतिरयम् ॥१०७॥

अन्वयः—अयम् अगुणः अपि गुणी । धनी न, क्षितिपाल-सहस्त्रनिषेवितपादरजः । अपटः अपि समस्तदिगन्त पटः । (अतः) अतिविचित्रचरित्रविभूतिः ॥ १०७ ॥

अन्वयार्थ—यद्यपि यतीन्द्रजी गुण-रहित हैं तथापि गुणी भी हैं । धनी नहीं है तो भी हजारों राजाओं द्वारा उनके चरणकमल के रज का सेवन किया जाता है । वस्त्र-रहित हैं तो भी सब दिशा वस्त्र हो रही है । (यह) स्वामी जी के अति अद्भुत चरित और ऐश्वर्य हैं ॥ १०७ ॥

भावार्थ—श्री योगीन्द्र जी महाराज के चरित्र और ऐश्वर्य अद्भुत देख पड़ते हैं । अर्थात् स्वामीजी सत्त्वगुण-रजोगुण-तमोगुग से परे हैं तथापि विद्या आदि गुण से युक्त गुणी भी हैं । स्वामी जी धनी नहीं हैं फिर भी हजारों राजा लोग स्वामी जी के चरण-कमल के धूलि को मस्तक पर लगाकर सेवा करते रहते हैं । वस्त्र-रहित हैं तो भी दशोदिशा आप ही उनका वस्त्र हो रहा है उन अर्थात् दिगम्बर कहे जाते हैं । इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य होगा ॥ १०७ ॥

वृतशास्त्रगतिः परमार्थमतिः
पदकञ्जनमद्वसुधाधिपतिः ।
स्मिततोषितसर्वमनुष्यतति-
र्यतिरात्मनि रज्यति पुण्यकृतिः ॥१०८॥

अन्वयः——वृतशास्त्रगतिः परमार्थमतिः पदकञ्जनमद्वसुधाधिपतिः । स्मिततोषितसर्वमनुष्यततिः पुण्यकृतिः । यतिः आत्मनि रज्यति ॥ १०८ ॥

अन्वयार्थ—जिसने शास्त्रानुसारी गति को स्वीकार किया है, परमार्थ में जिसकी बुद्धि है । और पृथिवी के पति जिसके चरण-कमल को प्रणाम कर रहे हैं, जिसने सब मनुष्यों के समुदाय को मुसकान से प्रसन्न कर दिया है । वे पुण्यात्मा यतीन्द्र जी आत्मचिन्तन में लग रहे हैं ॥ १०८ ॥

भावार्थ—जो शास्त्रानुसार आचरण करते हैं, परमार्थ अर्थात् मोक्षमात्र में अपनी बुद्धि लगाए हुए हैं, जिनके चरण-कमल को राजा लोग प्रणाम करते रहते हैं और अपने सहज मुस्कुराहट से, मुदिता स्थिति से मनुष्यों को प्रसन्नकर दिया करते हैं—ऐसे पुण्य-कुशल श्री स्वामी जी आत्मचिन्तन में रत हैं ॥ १०८ ॥

कुसुमेषुमहेषुवृते   विजने
कलहंसजयद्वनितागमने   ।
मृदुशीतसुगन्धिचलत्पवने
नहिकोऽपि प्रमाद्यति तत्र वने ॥१०९॥

अन्वय:——कुसुमेषुमहेषुवृते कलहंस-जयद्-वनितागमने । मृदुशीतसुगन्धिचलत्पवने विजने तत्र वने। कः अपि न हि प्रमाद्यति ॥ १०९ ॥

अन्वयार्थ—कामदेव के बाणों से व्याप्त और कलहंस की मंदगति से उत्तम स्त्रियों की गति है उसके आधार । और कोमल शीतल सुगन्धि पवन वाले पवित्र वन में। कोई भी जीव प्रमाद नहीं करता ॥ १०९ ॥

भावार्थ—कामदेव का आयुध पुष्प है। स्त्री आलम्बन है। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु आदि सहायक हैं। जन-शून्यस्थान स्थान है। वह आनन्द-वन कामदेव के आयुध रूप पुष्पों से भी भरा है और वहाँ स्त्रियां भी अपनी गति से कलहंस की उत्तम गति को जीत रही हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु भी बह रहा है और एकान्त भी है— इतनी कामभाव की उद्दीपन सामग्री के रहते भी उस वन में स्वामी जी महाराज के प्रभाव से कोई भी जीव प्रमादयुक्त अर्थात् काम के अधीन नहीं होता ॥ १०९ ॥

कलधौतसुशोभितसौधततिः
कलहंसगतिः सुदतीसुततिः ।
कलनादिरिरंसुपतत्रिततिः
कलयेन्न वशं प्रतिपक्षततिः ॥११०॥

अन्वयः—कलधौतसुशोभितसौधततिः । कलहंसगतिः सुदतीसुततिः । कलनादिरिरंसुपपत्रिततिः प्रतिपक्षततिः । (तम्) वशम् न कलयेत् ॥ ११० ॥

अन्वयार्थ—सुवर्ण के समान चमकीले महलों के समुदाय । हंस के समान सुन्दर चालवाली, सुन्दर दाँत वाली स्त्रियों की पंक्ति । और मधुर स्वर वाले मत्त पक्षियों की पङ्क्ति—(इन) वैराग्य के शत्रुओं का समुदाय । उनको अपने वश में न कर सका ॥ ११० ॥

भावार्थ—सुवर्ण के समान चमकीले घर, हंसगामिनी सुन्दर दाँत वाली स्त्रियां और मधुर स्वर वाले मत्त पक्षी—इत्यादि वैराग्य के शत्रुओं के दल के दल महाराज को अपने वश में न कर सके। अर्थात् महाराज का दृढ़ वैराग्य अचल रूप से विद्यमान है ॥ ११० ॥

कलिकालकरालमुखातिविभीत-
मुमुक्षुसुरक्षणदक्षदयः ।
स च पुत्रकलत्रसुखैषिजना-
र्थकृतेननु कल्पतरोरुदयः ॥१११॥

अन्वयः—कलिकालकरालमुखातिविभीतमुमुक्षुसुरक्षणदक्ष - दयः । स च पुत्र कलत्रसुखैषिजनार्थकृते । ननु कल्पतरोः उदयः अस्ति ॥ १११ ॥

अन्वयार्थ—कलि-काल के भयङ्कर मुख से अत्यन्त डरे हुए मोक्षार्थी लोगों की रक्षा करने में समर्थ, दयावान् श्रीस्वामीजी, पुत्र, स्त्री आदि के सुख चाहने वाले जनों के लिए तो मानो कल्पतरु वृक्षरूप उदय हुए हैं ॥ १११ ॥

भावार्थ—कलिकाल के भयङ्कर मुख अर्थात् काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि से अत्यन्त डरे हुए मोक्ष चाहने वाले जनों की रक्षा करने में बड़ी दया करते हैं और जो लोग स्त्री पुत्र आदि ही के सुख को चाहते हैं उनके लिए भी स्वामी जो महाराज ऐसे हैं मानो कल्पवृक्ष स्वर्ग से आकर विराजमान है ॥ १११ ॥

शिव एव जगत्त्रितयीजनकः
करुणेक्षणदत्तसुरेन्द्रपदः ।
पदसेविसरोजभवादिसुरः
निजभूतिविभूषितनैजपुरः ॥११२॥

अन्वयः—जगत्त्रितयीजनकः, करुणेक्षणदत्तसुरेन्द्रपदः । पदसेविसरोजभवादिसुरः । शिव एव निजभूतिविभूषितनैजपुरः अस्ति इति शेषः ॥ ११२ ॥

अन्वयार्थ—तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाले, अपनी कृपाकटाक्ष से इन्द्र आदि पदवी को देने वाले । और जिनके चरण की सेवा ब्रह्मा आदि देव किया करते हैं। वही शिवजी मानो अपनी विभूति से अपने धाम काशी को शोभित कर रहे हैं ॥ ११२ ॥

भावार्थ—उक्त स्वामी जी के तप का प्रभाव देख ऐसा जान पड़ता है मानो जो शिवजी तीनों लोक के उत्पत्ति-कर्त्ता हैं और अपने कृपाकटाक्ष से इन्द्र आदि देवपदवी को दिया करते और ब्रह्मा आदि देवता जिनके चरण की सेवा करते हैं—वही शिव जी श्री १०८ भास्करानन्द जी का अवतारधारण कर अपनी विभूति से अपनी पुरी काशी जी को शोभित कर रहे हैं ॥ ११२ ॥

अणिमादिकसिद्धिचया निखिला
ननु यस्य दृगञ्चितपक्ष्मभवाः ।
स रमेशदृगर्चितपादयुगो
गिरिशः स्मृतिमेति तदीक्षणतः ॥११३॥

अन्वयः—ननु निखिलाः अणिमादिकसिद्धिचयाः । यस्य दृगञ्चितपक्ष्मभवाः । रमेशदृगर्चितपादयुगः सः गिरिशः । तदीक्षणतः स्मृतिम् एति ॥ ११३ ॥

अन्वयार्थ—क्योंकि सब अणिमा आदि सिद्धि के समूह । जिसकी दृष्टि के सुन्दर पक्ष्म से उत्पन्न होते हैं । और लक्ष्मी पति ने अपनी दृष्टि से जिनके चरणों का पूजन किया था वे महादेव जी । इन स्वामीजी के दर्शन से स्मृति में आ जाते हैं ॥ ११३ ॥

भावार्थ—क्योंकि अणिमा आदि सिद्धियाँ जिसके भ्रूभङ्ग के संकेतमात्र से सेवकों को मिला करती हैं, लक्ष्मी के पति विष्णु भगवान् ने अपने नेत्र से जिनके चरणोंका पूजन किया था, वे शिव जी—स्वामी जी के दर्शन से स्मरण हो जाते हैं । पुष्पदन्ताचार्य ने नेत्र चढ़ाने की कथा लिखी है—यथा विष्णु भगवान् सहस्र कमलों से नित्य शिव—पूजन का—नियम ले सदा किया करते थे । एक दिन शिव जी ने विष्णु की भक्ति की परीक्षा लेने के लिए पूजन के समय एक कमल हर लिया । विष्णु ने शिवसहस्र नाम से कमल चढ़ाते समय नौ सौ निन्यानबे कमल पाया तब विचारा—'कि यदि हम कमल लेने को जावें या किसी से लाने को कहें तो पूजा में विक्षेप होगा—जो ठीक नहीं है । यतः मुझे शिव जी भी कमलनयन कहते हैं अतः सङ्कल्प पूरा करने के लिए अपना एक नेत्र पद्म चढ़ा देता हूँ ।' यह निश्चय कर अपना एक नेत्र शिवजी को विष्णुजी ने जब चढ़ा दिया तब शिवजी अतिप्रसन्न हुए इत्यादि ॥ ११३ ॥

तमाराद्धुं गच्छत्क्षितिपतिशिरः-सङ्गविलसत्
किरीटप्रोतोद्यन्मणिकिरणचित्रस्तरुचयः
अभूद् यद् भूपानामनुगतरमाभूषणरुचिर्न
तच्चित्रं योगेऽनुचरति यतः सिद्धिनिवहः ।।११४।।

अन्वयः—तम् आराद्धुम् । गच्छत्क्षितिपतिशिरः सङ्गविलसत्किरीटप्रोतोद्यन्मणिकिरणचित्रः तरुचयः । भूपानाम् अनुगतरमाभूषणरुचिः यत् अभूत् तत् चित्रम् न । यतः योगे सिद्धिनिवहः अनुचरति ।। ११४ ।।

अन्वयार्थ—स्वामी जी की सेवा के लिए । आते हुए राजा लोगों के शिर पर शोभित जो मुकुट—उसके मणि की किरणों से अनेक वर्ण जो वृक्ष-समुदाय उसने । राजा लोगों के साथ आई हुई राजलक्ष्मी के भूषणों की शोभा को धारण किया, यह आश्चर्य नहीं है । क्योंकि योग के पीछे सिद्धि का समूह चला करता है ।। ११४ ।।

भावार्थ—उक्त स्वामी जी की सेवा के लिए आते—जाते हुए राजा लोगों के मुकुट-मणि की प्रभा से रंग-बिरंगे उस आनन्द बाग के वृक्ष समूह—वहाँ आते हुए राजा लोगों के साथ आयी हुई राज्य-लक्ष्मी के आभूषणों की शोभा को धारण करते हैं, यह अद्भुत बात नहीं है, क्योंकि योग के पीछे सिद्धि आप से आप आती है ।। ११४ ।।

एवं तत्र निवासमस्य दधतो याताः समा विंशतिः
प्राप्तः षष्टितमश्च दीर्घतपसः संवत्सरो जन्मतः ।
दृष्ट्वा दर्शनकाङ्क्षिविश्वजनतासम्मर्दकोलाहलं
विक्षेपं रहसि स्थितिं स विदधे लोकागतिश्चारुणत्॥११५॥

अन्वयः—तत्र एवम् निवासम् दधतः । दीर्घतपसः अस्य विंशतिसमाः याताः । जन्मतः षष्टितमः च संवत्सरः प्राप्तः । सः दर्शनकाङ्क्षिविश्वजनतासम्मर्दकोलाहलम् विक्षेपम् दृष्ट्वा । रहसि स्थितिम् विदधे लोकागतिम् च अरुणत् ॥ ११५ ॥

अन्वयार्थ—उस स्थान में उक्त प्रकार से वास करते हुए। महा तपस्वी श्री स्वामी जी का बीस वर्ष बीत गया। और जन्म से साठवां वर्ष आकर प्राप्त हुआ। स्वामी जी के दर्शन की इच्छा वाले सब लोगों की भीड़ और कोलाहल को समाधि में विघ्न मानकर। एकान्त में स्थिति किया और लोगों के आने को रोका ॥ ११५ ॥

भावार्थ—उस आनन्द-बाग में उक्त प्रकार के ऐश्वर्य्य के साथ निवास करते हुए उग्र तपस्वी स्वामी जी महाराज को बीस वर्ष बीत गए। और जन्म से साठवाँ वर्ष आकर प्राप्त हुआ। उस समय स्वामी जी साक्षात् दर्शन के लिए आते-जाते हुए लोगों की भीड़ और कोलाहल बढ़ता रहा। इसे यतिजी ने तपस्या का विघ्न माना और आत्मचिन्तन के लिए एकान्त में स्थित हुए और लोगों के आगमन को भी बन्द किया ॥११५॥

कीर्त्तिमरालिकयाऽतिविनोदितनाकविलासवतीकः
प्रभुनारायणसिंहमहोदयकाशीधरणिनरेशः ।
निजधाम्नि स्मरणार्थममुष्य मनोरमकामदमूर्त्ति
रक्षति सादरमेवमुपैति न कोऽत्र मनोरथपूर्त्तिम् ।।११६।।

अन्वयः—कीर्तिमरालियया अतिविनोदितनाकत्रिलासवतीकः । प्रभुनारायणसिंहमहोदयकाशीधरणिनरेशः । निजधाम्नि अमुष्य स्मरणार्थंम् । मनोरमकामदमूर्तिम् सादरम् रक्षति । अत्र कः एव मनोरथ पूर्त्तिम् न उपैति । (अपितु सर्व एव इति शेषः) ।। ११६ ।।

अन्वयार्थ—अपनी कीर्त्तिरूपी हंसी से स्वर्ग की स्त्रियों को अति प्रसन्न करने वाले। प्रभु नारायण सिंह महाराज काशी के राजा ने। अपने घर में स्वामी जी के स्मरण (और दर्शन) के लिए। स्वामी जी को सुन्दर मूर्त्ति को बड़े आदर से रखा है। ऐसी भक्ति से कौन मनोरथ की पूर्णता को नहीं पहुँचता। वरन् सब कोई पहुँचते हैं ॥ ११६ ॥

भावार्थ—जिसकी कीर्त्ति रूपी हँसी से स्वर्ग के रहने वाली स्त्री लोग क्रीडा करती हैं—ऐसे काशीजीके राजा महाराज प्रभुनारायण सिंह बहादुर ने नित्य स्मरण-दर्शन के लिए उक्त स्वामी जी की मूर्त्ति को बड़े आदर से अपने गृह में रखा है और नित्य दर्शन करते हैं। इस प्रकार की भक्ति से किसका मनोरथ पूरा नहीं होता अर्थात् सबका पूरा होता है ॥ ११६ ॥

बड़हरनगराधीशा राज्ञी श्रीवेदशरणकुअँरिः सा ।
शिवमन्दिरयुतभवनेऽतिष्ठिपदस्याद्भुताम् मूर्त्तिम् ।।११७।।

अन्वयः—बडहरनगराधीशा राज्ञी सा श्रीवेदशरणकुअँरिः ।
शिवमन्दिरयुतभवने अस्य अद्भुताम् मूर्त्तिम् अतिष्ठिपत् ।।११७।।

अन्वयार्थ—बढ़हर नगर की स्वामिनी रानी श्री वेदशरण कुअँरि ने भी। शिवालय से युक्त मन्दिर में इनकी अद्भुत मूर्ति का स्थापन किया ।। १७ ।।

भावार्थ—बढ़हर नगर की रानी उस वेदशरण कुअँरि ने भी शिवालय से युक्त मन्दिर में इन श्री स्वामी जी महाराज की मूर्त्ति को विधि से स्थापन करा कर नित्य पूजन कराती हैं ।। ११७ ।।

एतस्य मूर्त्तिमवनीपवरोऽप्यमेठी
राजो विलासविपिने भवनं विधाय।
श्रीलालमाधवनृसिंहनिरस्तशत्रु-
रस्थापयत् सविधि सम्यगपूपुजच्च ।।११८।।

अन्वय:—अवनीपवर: श्रीलालमाधवनृसिंहनिरस्तशत्रु: । अमेठीराज: अपि विलासविपने भवनम् विधाय । एतस्य मूर्त्तिम् सविधि अस्थापयत् सम्यक् अपूपुजत् च ।। ११८ ।।

अन्वयार्थ—पृथिवी-पतिओं में श्रेष्ठ श्री लाल माधव सिंह शत्रुजित् । अमेठी के राजा ने भी विलासबाग में मन्दिर बनवाकर । (उसमें) यतीन्द्र महाराज की मूर्ति को विधिवत् स्थापन कराया और भली भाँति पूजन भी करायां ।। ११८ ।।

भावार्थ—राजाओं में श्रेष्ठ शत्रु-विजयी अमेठी के राजा श्रीलाल-माधव सिंह बहादुर ने भी स्वामी जी महाराज के निवास बाग में सुन्दर मन्दिर बनवाकर स्वामी जी महाराज की मूर्त्ति का बड़ी विधि से स्थापन कराया और भली भाँति पूजन भी कराते जाते हैं ।। ११८ ।।

नागोधभूपरिवृढः स वदान्यवीरः
श्रीयादवेन्द्रनृपतिः कविकैरवेन्दुः ।
तत्स्वामिनां चरणवारिजसक्तचित्त-
स्तन्मूर्त्तिमात्मगृहदैवतमाव्यधत्त ।।११९।।

अन्वयः—तत् स्वामिनाम् चरणवारिजसक्तचित्तः कविकैरवेन्दुः। वदान्यवीरः सः नागोधभूपरिवृढः। श्रीयादवेन्द्रनृपतिः तन्मूर्त्तिम्। आत्मगृहदैवतम् आव्यधत्त ।। ११९ ।।

अन्वयार्थ—उक्त स्वामी जी के चरण-कमल में अनुरक्त-चित्त, कुंई के पुष्प-समान कविकुल के लिए चन्द्र। वह दानवीर नागोध की पृथिवी के प्रभु। श्री यादवेन्द्र महाराज ने स्वामी जी महाराज की मूर्ति को अपने घर में गृह-देवता के रूप में स्थापित किया ।। ११९ ।।

भावार्थ—यतीन्द्र जी के चरणारविन्द में भक्तिमान कुमुद-समान कवि-कुल के प्रकाशक, चन्द्र-सदृश, दानवीर नागोध के राजा श्री यादवेन्द्र महाराज ने श्री स्वामी जी महाराज की मूर्त्ति को अपने घर में गृह-देवता के रूप में स्थापित किया ।। ११९ ।।

शूरो विज्ञः कुलीनः प्रभुरपि धरणेर्यश्च चन्दापुरस्य
प्रत्यब्दं काशिकायां वितरति सदसि प्राज्ञवर्ये धनं यः ।
यो वा श्लाघ्यैर्गुणौघैरतिजयति जगन्मोहनः सोऽपि सिंह-
स्तत्पादाम्भोजयुग्मस्मृतिसुखनिभृतोदञ्चिताङ्गं बिभर्त्ति ।१२०।

अन्वयः—शूरः विज्ञः कुलीनः च । यः चन्दापुरस्य धरणेः प्रभुः अपि । यः काशिकायाम् प्रत्यब्दम् सदसि प्राज्ञवर्ये धनम् वितरति । यः वा श्लाघ्यैः गुणौघैः अतिजयति । सः सिंहः जगन्मोहनः अपि । तत् पादाम्भोजयुग्मस्मृतिसुखनिभृतोदञ्चिताङ्गम् बिभर्ति ।। १२० ।।

अन्वयार्थ—वीर, पण्डित, उत्तम कुल में उत्पन्न । चन्दापुर की पृथिवी के स्वामी और । जो काशी जी में हर साल सभा में पण्डितों को धन देते हैं । और जो उत्तम-गुण समूह से अति शोभित हो रहे है । वह जगमोहन सिंह जी भी स्वामी जी के चरण कमलों के स्मरण-सुख से पूर्ण रोमाञ्चित अङ्ग को धारण करते हैं ।। १२० ।।

भावार्थ– शूर, विज्ञ और कुलीन, चन्दापुर के राजा, जो काशी जी में हर साल पंडितसभा करके विद्वानों को धन दिया करते हैं वह उत्तम-उत्तम गुणों से अत्यन्त शोभायमान अर्थात् सबसे उत्तम जगमोहन सिंह जी भी उक्त स्वामी जी महाराज के चरणारविन्दों के स्मरण-सुख में मग्न होकर उत्तम गुणों से शोभित हैं ।। १२० ।।

एवमस्य बहवो नरनाथाः
पूजनाय भवनोपवनादौ ।
शास्त्रदृष्टविधिना प्रतिमां स्वे
स्थापयन्ति बहुमानभृतः स्म ॥१२१॥

अन्वयः—एवम् बहुमानभृतः वहव नरनाथाः । स्वे भवनो-पवनादौ पूजनाय अस्य प्रतिमाम् । शास्त्रदृष्टविधिना स्थापयन्ति स्म ॥ १२१ ॥

अन्वयार्थ—इसी प्रकार (यतीन्द्र जी का) बहुत मान करने वाले राजा लोगों ने । अपने घर और बगीचे में पूजन करने के लिए स्वामी जी की प्रतिमा का । शास्त्रोक्त विधि से स्थापन किया है ॥ १२१ ॥

भावार्थ—इसी प्रकार स्वामी जी के भक्त बहुत से राजा लोगों ने अपने-अपने घरों में, बागों में मन्दिर बनवा के नित्य पूजन और दर्शन के लिए उक्त स्वामी जी महाराज की मूर्त्ति को शास्त्रोक्त विधान से स्थापन किया है ॥ १२१ ॥

वाराणस्यां ब्रह्मनालान्तरालस्थायी
श्रीमान् शीतलादिप्रसादः ।
तारुण्याप्तस्तत्तनूजोऽप्यकस्मात्
प्रासादस्थोऽत्यूद्ध्र्वतः क्वाप्यपप्तत् ।।१२२।।

अन्वयः—वाराणस्याम् ब्रह्मनालान्तरालस्थायी । श्रीमान् शीतलादिप्रसादः । प्रासादस्थः तारुण्याप्तः तत्तनूजः क्व अपि । अकस्मात् अत्यूद्ध्र्वतः अपप्तत् ।। १२२ ।।

अवयार्थ—काशी जी में ब्रह्मनाल के पास रहने वाले । श्रीमान् शीतलाप्रसाद जो की हैं अटारी पर स्थित, युवा, अवस्था को प्राप्त, इनका पुत्र कधी (कभी) । अकस्मात् बड़े ऊँचे से गिर पड़ा ।। १२२ ।।

भावार्थ—काशी में ब्रह्मनाल मुहल्ला के रहने वाले श्रीमान् शीतलाप्रसाद जी का, महल पर स्थित जवान लड़का कधी (कभी) अचानक बड़े ऊँचे से गिर पड़ा ।। १२२ ।।

मूर्च्छां प्राप त्यक्ततज्जीवनाशाः
सर्वेऽभूवन् स्नेहिवर्गाः समन्तात् ।
तस्मिन् काले तत् पिता स्वामिसेवी
तूर्णं गत्वा तं समाचष्ट सर्वम् ।।१२३।।

अन्वयः—मूर्च्छाम् प्राप समन्तात् स्नेहिवर्गाः सर्वे । त्यक्त-तज्जीवनाशाः अभूवन् । तस्मिन् काले स्वामिसेवी तत्पिता । तूर्णम् गत्वा तम् सर्वम् समाचष्ट ।। १२३ ।।

अन्वयार्थ—मूर्छा को प्राप्त हो गया, तब उनके सब बन्धुओं ने । उसके जीने की आशा को त्याग दिया था । उस समय स्वामी जी के सेवक उस के पिता ने । शीघ्र जाकर स्वामी जी से सब (समाचार) निवेदन किया ।। १२३ ।।

भावार्थ—गिरते ही मूर्छित हो मृतक समान पड़ा था और आस-पास के भाई बन्धु भी उस लड़के के जीने की आशा को छोड़ बैठे थे । इतने में स्वामी जी के पूर्ण भक्त, उस लड़के पिता ने शीघ्र स्वामी जी के पास जा कर सब वृत्तान्त का निवेदन कर दिया ।। १२३ ।।

श्रुत्वा तेन व्याहृतं स्वामिवर्याः
साशीः प्रादुः पादनिर्णेजनं स्वम् ।
पित्रानीतस्यास्य पादोदकस्य पानाद्
बालो नष्टसर्वव्यथोऽभूत् ॥१२४॥

अन्वयः—तेन व्याहृतम् श्रुत्वा स्वामिवर्याः । स्वम् पाद-निर्णेजनम् साशीः प्रादुः । पित्रानीतस्य अस्य पानाद् । बालः नष्टसर्वव्यथः अभूत् ॥ १२४ ॥

अन्वयार्थ—उसके कहे हुए को सुनकर श्रेष्ठ स्वामी जो महाराज ने । अपना चरणामृत आशीर्वाद के साथ दिया । पिता से लाए गए उस चरणामृत के पीने से । बालक की सब व्यथा नष्ट हो गई ॥ १२४ ॥

भावार्थ--उक्त सब वृत्तान्त को सुन कर दयायुक्त स्वामिश्रेष्ठ महाराज ने अपना चरणामृत और आशीर्वाद दिया । पिता द्वारा लाए गए उस चरणामृत के पीते ही वह लड़का चैतन्य हो गया । और उसकी सब पीड़ा दूर हो गयी ॥ १२४ ॥

सपुत्रशीतलाप्रसाद – प्राड्विवाकजीवनं ददौ
यतिः स्वतेजसाऽस्त्यतोऽधिकं किमद्भुतम् ।
बहून्यमूदृशानि दुष्कराणि मानवा भुवि यते-
र्महाद्भुतानि सिद्धिदानि वर्णयन्त्यहो ।।१२५।।

अन्वयः—यतिः स्वतेजसा सपुत्रशीतलाप्रसादप्राड्विवाक-जीवनम् ददौ । अतः अधिकम् किम् अद्भुतम् अस्ति । अहो मानवाः भुवि यतेः अमूदृशानि दुष्कराणि । बहूनि सिद्धिदानि महाद्भुतानि वर्णयन्ति ।। १२५ ।।

अन्वयार्थ—यतीन्द्र जी ने अपने तेज से पुत्र-सहित शीतलाप्रसाद तहसीलदार को जीवनदान दिया। इससे अधिक और क्या आश्चर्य है ! अहो मनुष्य लोग पृथिवी पर यतीन्द्र जी के इस प्रकार के दुष्कर। बहुत से सिद्धि देनेवाले महा अद्भुत चरित्र का वर्णन करते हैं ।। १२५ ।।

भावार्थ—श्री यतीन्द्र जी बड़े प्रभाव वाले हैं। जिन्होंनें पुत्र-सहित शीतलाप्रसाद जीको जीवनदान दिया। इससे बढ़कर और अद्भुत बात कौन होगी। इस प्रकार के अतिकठिन बहुत से सिद्धि के देने वाले कर्म और बड़े अद्भुत महाराज के चरित को संसार में मनुष्य लोग वर्णन करते हैं। यहाँ ग्रन्थ के बढ़ जाने की डर से संक्षेप से वर्णंन किया गया है ।। १२५ ।।

तातश्चास्य पवित्रचारुचरितः काश्यां शिवतत्त्वं गतः
पत्नी तस्य तपोमयो भगवती ज्योतिस्तदीयं श्रिता ।
माता चास्य हिमालये बदरिकाक्षेत्रे तपोरूपिणी
ध्यायन्ती परमेश्वरं मधुरिपुं वैकुण्ठलोकं गता ॥१२६॥

अन्वयः—पवित्रचारुचरितः अस्य तातः च काश्याम् शिवत्वम् गतः । तपोमयी भगवती तस्य पत्नी काश्याम् तदीयम् ज्योतिः श्रिता । च अस्य माता हिमालये बदरिकाक्षेत्रे तपोरूपिणी । मधुरिपुम् परमेश्वरम् ध्यायन्ती वैकुण्ठलोकम् गता ॥ १२६ ॥

अन्वयार्थ—पवित्र सुन्दर चरित्रवाले स्वामी जी के पिता काशी जी में शिव स्वरूप हो गए । तपःस्वरूप भगवती स्वामी जी की स्त्री ने काशी जी में इनके तेज का आश्रयण किया । और स्वामी जी की माता हिमाचल पर्वत पर बदरीनाथ जी में तपःस्वरूप हो । मधु दैत्य के मारने वाले परमेश्वर का ध्यान करती हुई वैकुण्ठलोक को पधारीं ॥ १२६ ॥

भावार्थ—स्वामी जी के पवित्र, सुन्दर, चरित्रवाले पिता जी ने काशी जी में शरीर त्याग करके शिव के सारूप्यमयी मोक्ष पाया । तपःस्वरूप भगवती स्वामीजी की पत्नी ने भी काशीजी में देह को छोड़ कर स्वामीजी के तेज का आसरा लिया । और स्वामी जी की माता हिमालय पहाड़ पर बदरीनाथ जी में तपःस्वरूप हो मधुदैत्य के मारने वाले भगवान् नारायण का ध्यान करती हुई वैकुण्ठलोक को पधार गयी ॥ १२६ ॥

वर्षे षट्युगनन्दभूपरिमिते मार्गे गुरौ वासरे
शुक्ले सूर्यतिथावनेन विदुषा योगीन्द्रवर्येण सः।
सम्प्राप्याऽथ सुदुर्लभां बुधवरः संन्यासदीक्षां शुभां
काश्यां मैथिलभूसुरो विजयते श्रीचीचनाख्यः सुवित् ॥१२७॥

अन्वयः—षट्युगनन्दभूपरिमिते वर्षे मार्गे शुक्ले सूर्यतिथौ गुरौ वासरे। अनेन विदुषा योगीन्द्रवर्येण। सुदुर्लभाम् संन्यास-दीक्षाम् संप्राप्य। अथ बुधवरः सुवित्मैथिलभूसुरः। सः श्रीची-चनाख्यः काश्याम् विजयते ॥ १२७ ॥

अन्वयार्थ—छ, चार, नौ और एक से गिने अर्थात् १९४६वें वै० संवत्सर में अगहन शुक्ल सप्तमी बृहस्पति के दिन। इस विद्वान् योगीन्द्र-श्रेष्ठ से। अतिदुर्लभ शुभ संन्यास की दीक्षा को प्राप्त कर। पण्डितों में श्रेष्ठ विद्वान् मैथिल ब्राह्मण। वह श्रीचीचन नाम के काशी जी में सुशोभित हो रहे हैं ॥ १२७ ॥

भावार्थ—संवत् १९४६ अगहन शुल्क सप्तमी गुरुवार के दिन उक्त विद्वान् योगीन्द्रों में श्रेष्ठ श्री भास्करानन्द जी यतीन्द्र से अतिदुर्लभ संन्यास-दीक्षा लेकर पण्डितों में श्रेष्ठ विद्वान् मैथिल ब्राह्मण श्री चीचन जी महाराज काशी जी में सुशोभित हो रहे हैं ॥ १२७ ॥

बिभ्रत्तीर्थगणेश्वरे निवसतिं कायस्थवंशोद्भवो
मोजफ्फरपुरपत्तनाङ्कविलसद् ग्रामावलीशालिनः ।
स्वामी नाह्लपुरस्य रायपदयुग् रुद्रप्रसादाभिध
स्तीर्थानामटनेन शुद्धहृदयो मुक्तोऽविमुक्ते ऽभवत् ।।१२८।।

अन्वयः—तीर्थगणेश्वरे निवसतिम् बिभ्रत् । कायस्थवंशोद्भवः । मोजफ्फरपुरपत्तनाङ्कविलसद्ग्रामावलीशालिनः । नाह्लपुरस्य स्वामी रायपदयुक् । रुद्रप्रसादाभिधः तीर्थानामटनेन शुद्धहृदयः । अविमुक्ते मुक्तः अभवत् ।। १२८ ।।

अन्वयार्थ—तीर्थों के राजा प्रयागराज हैं—वहाँ के निवासी । कायस्थ कुल में उत्पन्न। मुजफ्फरपुर जिला में शोभायमान ग्रामसमूहसहित नाह्लपुर के स्वामी और राय पदवी से सुशोभित। श्रीरुद्रप्रसाद जी ने तीर्थों की यात्रा से शुद्ध-हृदय होकर इस काशी जी में मुक्ति को पाया ।। १२८ ।।

भावार्थ—तीर्थराज श्रीप्रयाग के रहने वाले, कायस्थ कुल में उत्पन्न, मुजफ्फरपुर जिला में शोभायमान ग्राम-समूहःसहित नाह्लपुर परगने के स्वामी, राय-पदवी से युक्त, श्री चौधरी रुद्रप्रसादजी ने सब तीर्थों की यात्रा करने से शुद्धहृदय होकर श्री काशी जी में मुक्ति को पाया ।। १२८ ।।

तदात्मजः सद्गुणशीलशालो
श्रीमान् महादेवप्रसादनामा ।
अपारसंसारमिमं तरीतुम्
न्यबन्धयत् पुण्यचरित्रमेतद् ।।१२९।।

अन्वयः—तदात्मजः सद्गुणशीलशाली । श्रीमान् महादेव-प्रसादनामा । इदम् अपारसंसारम् तरीतुम् । एतत् पुण्यचरित्रम् न्यबन्धयत् ।। १२९ ।।

अन्वयार्थ—उनके पुत्र उत्तम गुण और उत्तम स्वभाव से सुशोभित । श्रीयुत् महादेव प्रसाद जी ने इस अपार संसार के पार करने के लिए । इस पुण्य चरित्र को बनवाया ।। १२९ ।।

भावार्थ—उक्त चौधरी जी के पुत्र, उत्तम गुण और उत्तम स्वभाव से सुशोभित, श्रीमान् श्रीमहादेव प्रसाद चौधरो जी ने अपार संसार को पार करने के लिए नौकारूप अर्थात् संसार से उद्धार करने वाले श्री स्वामी जी के इस पुण्य चरित का निर्माण करवाया ।। १२९ ।।

पूर्णा चान्द्री कला वा दिशिदिशि लहरी क्षीरसिन्धूत्थिता वा
कुन्दालीमालिका वा शिवनिलयगिरेः कान्तिरेवोद्गता वा ।
हंसीनां संहतिर्वेत्यवनितलबुधैस्तर्क्यते यस्य कीर्तिः
सोयं लक्ष्मीश्वराख्यः जगति विजयते नायकस्तीरभुक्तेः ।१३०।

अन्वय:—अवनितलबुधैः यस्य कीर्त्तिः । पूर्णा चान्द्री कला वा । दिशि दिशि क्षीरसिन्धूत्थिता लहरी वा । कुन्दाली-मालिका वा । शिवनिलयगिरेः कान्तिः एव उद्गता वा । हंसीनाम् संहतिः वा इति तर्क्यते । सः अयम् तीरभुक्तेः नायकः लक्ष्मीश्वराख्यः जगति विजयते ।। १३० ।।

अन्वयार्थ—पृथिवी में पण्डितों से जिसकी कीर्त्ति । यह पूर्ण चन्द्रमा की कला है । अथवा सब दिशाओं में क्षीर-समुद्र से उठी लहर है । या कुन्द पुष्पों के पङ्क्तियों की माला है । अथवा महादेव जी के निवास कैलाश पर्वतकी चमकहै । या हंसिनियों की पङ्क्ति है—इसप्रकार तर्कना की जाती है । वह तीरभुक्ति के स्वामी लक्ष्मीश्वर नाम से जगत् में अति-शोभायमान हो रहे हैं ।। १३० ।।

भावार्थ—संसार के सब पण्डित लोग जिसकी कीर्त्ति को देखकर कल्पनाएँ करते हैं—क्या यह पूर्ण चन्द्रमा की कला है अथवा क्षीर-सागर से सब ओर उठ रही लहर है या कुन्द के पुष्पों की पंक्ति है (मल्लिका है) या चमेली है अथवा कैलाश पर्वत की दीखती चमक है या हंसिनियों की पंक्ति है—ऐसी विविध प्रकार तर्कना करते हैं—ऐसी कीर्त्ति से विभूषित मिथिला के स्वामी श्री लक्ष्मीश्वर सिंह वहादुर जो जगत् में अत्यन्त शोभायमान हो रहे हैं ।। १३० ।।

राजत्तत्पाणिमन्दारच्छायासत्सङ्गशीतलः ।
साम्बशम्भोः पदाम्भोजमकरन्दमधुव्रतः ॥१३१॥

चरितमिदमुदारं सच्चिदानन्दमूर्त्ते-
र्यमिन इति पवित्रं मानसे संविचिन्त्य ।
अकृत शिवकुमारस्तन्निबन्धं स्वपित्रो-
श्चरणकमलपुण्यध्यानलब्धावलम्बः ॥१३२॥

इति श्री परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री १०८ भास्करानन्द स्वामिनः जीवनचरितं श्रीपण्डितप्रवर शिवकुमारशास्त्रि-विरचितं समाप्तम् ॥

अन्वयः—राजत्तत्पाणिमन्दारच्छायासत्सङ्गशीतलः । साम्बशम्भोः पदाम्भोजमकरन्दमधुव्रतः । स्वपित्रोः चरणकमल-पुण्यध्यानलब्धावलम्बः । शिवकुमारः सच्चिदानन्दमूर्त्तेः यमिनः । इदम् उदारम् चरितम् पवित्रम् इति मानसे संविचिन्त्य । तन्निबन्धम् अकृत ॥ १३१–१३२ ॥

अन्वयार्थ—स्वर्गवृक्ष-रूपी उनके कल्पवृक्ष रूप यतीन्द्र जी के सुन्दर हस्त की छाया के सत्संग से शान्तचित्त, और साम्बशिव के चरण-कमल का जो मकरन्द उसके भ्रमररूप। और अपने माता-पिता के चरण-कमल का जो पुण्यध्यान उसके आश्रित। श्री शिवकुमार जी ने सच्चिदानन्द मूर्त्ति श्रीयतीन्द्र जी के। इस उदार चरित्र को पवित्र है—ऐसा विचार कर इसका प्रणयन किया ॥ १३१–१३२ ॥

भावार्थ—मिथिलेश्वर राजा के कल्पवृक्ष रूपी सुन्दर हस्त—छाया के सत्संग से निश्चिन्त चित्त, साम्बशिव के चरण-कमल के परम भक्त और माता पिता के चरण कमलों के पुण्य ध्यान का भरोसा करने वाले श्रीशिवकुमार शास्त्री जी ने सच्चिदानन्दस्वरूप यतीन्द्र श्री १०८ भास्करानन्द जी के इस उत्तम चरित्र को लोकपावनकारी है—ऐसा मनमें विचार कर इसकी रचना की ॥ १३१–१३२ ॥

इति श्री मालवीय-चतुर्वेद-पण्डितजयगोविन्द-कृतं सान्वयं भाषाविवरणं समाप्तम् ॥

श्रीगणेशाय नमः

श्रीयतीन्द्रगुरुस्तोत्रम्

दशशतदलपद्मे पूर्णचन्द्रप्रभाभं
मुदितवदननेत्रं गन्धपुष्पाम्बराढ्यम् ।
अभयवरकराब्जं हंसगं के स्मरामि
गुरुममरशरीरं भास्करानन्दमीशम् ।। १ ।।

अन्वयः—के दशशतदलपद्मे हंसगम् पूर्णचन्द्रप्रभाभम् । मुदितवदननेत्रम् गन्धपुष्पाम्बराढ्यम् । अभयवरकराब्जम् अमर-शरीरम् । ईशम् भास्करानन्दम् गुरुम् स्मरामि ।। १ ।।

अन्वयार्थ—मस्तक में सहस्रदल कमल के बीच हंसपीठ पर पूर्ण-चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त। प्रसन्नमुख, प्रसन्ननेत्र, सुगन्धित पुष्प और वस्त्र से युक्त। अभयमुद्रा-वरमुद्रा-संयुक्त है। हस्त जिनका ऐसे देव शरीर। स्वामी भास्करानन्द गुरुजी का स्मरण करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—योगी जन अपने मस्तक में सहस्रदल कमल का ध्यान करते हैं—उस कमल के बीच में हंसासन पर स्थित, पूर्णचन्द्रमा के समान प्रकाशमान, प्रसन्न मुख, प्रसन्न नेत्र, सुगन्धित पुष्प और वस्त्र को धारण किए हुए, अभय और वरमुद्रा युक्त अपने करकमलों से सेवकों के मनोरथ पूर्ण करने वाले देवशरीर स्वामी श्री १०८ भास्करानन्द जी यतीन्द्र गुरु जी का ध्यान करता हूँ ॥ १ ॥

साक्षाद्धराकारयुतं सशान्ति
सद्योगसिंहासनराजमानम् ।
मोक्षार्थसिद्धयार्थमहं स्वमूर्ध्ना-
श्रीभास्करानन्दगुरुं नमामि ।। २ ।।

अन्वयः—अहम् मोक्षार्थसिद्धयर्थम् साक्षाद्धराकारयुतम् । सशान्तिम् सद्योगसिंहासनराजमानम् । श्रीभास्करानन्दगुरुम् स्वमूर्ध्ना नमामि ।। २ ।।

अन्वयार्थ—मैं मोक्ष रूपी प्रयोजन सिद्ध हो इस लिए साक्षात् पृथिवी-सम्बन्धी आकार को धारण किए हुए। शान्तिसहित और सुन्दर योग-सिंहासन पर विराजमान। श्री भास्करानन्द गुरु जी को अपने शिर से प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—संसार का आवागमन छूट जाय—इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए शिव की आठ मूर्त्तियों में से पृथिवीसम्बन्धी मूर्त्ति को धारण किए हुए प्रत्यक्ष शिवस्वरूप शान्ति युक्त और उत्तम योग-सिंहासन पर विराजमान श्री भास्करानन्द गुरु महाराज को मैं शिर से प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

सदानन्ददेहं परानन्दकन्दं
यतिंभास्करानन्दमीशं प्रसन्नम् ।
भवेद् यस्य सान्निध्यमात्रेणजन्तु-
श्चिदानन्दरूपो गुरुं तं नमामि ।। ३ ।।

अन्वय:—जन्तु: यस्य सान्निध्यमात्रेण चिदानन्दरूप: भवेत् । तम् आनन्ददेहम् परानन्दकन्दम् । प्रसन्नम् यतिम् ईशम् भास्करानन्दम् सदा नमामि ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—जीवधारी जिनके पास रहने से ही चिदानन्दस्वरूप हो जाता है । उस सदानन्द-देशरीर परमानन्द-समूह । प्रसन्न यति स्वामी श्री भास्करानन्द जी को प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—प्राणी जिनके पास रहने से ही कुछ काल में चिदानन्द-स्वरूप हो जाता है अर्थात् संसार के दुःख से छूट आनन्दस्वरूप हो जाता है उस परब्रह्मस्वरूप और उत्तम आनन्दों के मूल अर्थात् जिनकी कृपा से सब आनन्द उत्पन्न होते हैं उस प्रसन्न यति स्वामी श्री भास्करानन्द महाराज को सदा नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

चराचरं व्याप्तमपीह येन-
खण्डबिम्ब बिम्बाभमहर्निशं तम् ।
सन्दर्शितं तत् पदमऽत्र येन
श्रीभास्करानन्दगुरुं नमामि ।। ४ ।।

अन्वयः—इह येन चराचरम् अपि व्याप्तम् । येन अत्र अखण्डविम्बाभम् तत् पदम् सन्दर्शितम् । तम् श्रीभास्करानन्द-गुरुम् (अहम्) अहर्निशम् नमामि ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—इस संसार में जिसने चर और अचर को भी व्याप्त लिया है। और जिसने यहाँ अखण्ड विम्ब-स्वरूप ब्रह्मपद को दिखा दिया है। उस श्रीभास्करानन्द गुरु जी को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ।। ४ ।।

भावार्थ—इस संसार में जितने चल और अचल पदार्थ हैं उन सबके बाहर-भीतर जो व्याप्त हो रहे हैं और जिनसे यहाँ परिपूर्ण विम्बस्वरूप ब्रह्मपद का दर्शन होता है। उन श्री भास्करानन्द गुरु जी महाराज को मैं सदा नमस्कार करता हूँ ।। ४ ।।

अबोधरूपात् तमसोऽन्धभावं
गतस्य बोधाञ्जनसत्पृषत्या ।
उन्मीलनं चक्षुरुपैति येन
तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ।। ५ ।।

अन्वयः—अबोधरूपात् तमसः अन्धभावम् गतस्य चक्षुः । बोधाञ्जनसत्पृषत्या येन उन्मीलनम् उपैति । तम् भास्करानन्द-गुरुम् नमामि ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे हुए लोगोंके नेत्र । ज्ञानरूपी अञ्जन के उत्तम विन्दु स्वरूप जिस (यतीन्द्र जी) से खुल जाता है । उस भास्करानन्द गुरु जी को प्रणमन करता हूँ ।। ५ ।।

भावार्थ—अज्ञानरूपी अन्धकार से मनुष्यों की अन्धी आखें ज्ञान-स्वरूप अञ्जन के उत्तम बिन्दुस्वरूप जिस स्वामी जी महाराज की कृपा से देखने में समर्थ होतीं हैं अर्थात् जिस महात्मा की कृपा से मनुष्यों के हृदय में सत् और असत् का विवेक उत्पन्न होता है—ऐसे श्री भास्करानन्द जी गुरु महाराज को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ५ ।।

गुरुर्विधाता गुरुरेव विष्णुर्गुरुश्च साक्षान्मकरध्वजारिः ।
गुरुस्तथैतत् सकलं जगद् यस्तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥६॥

अन्वयः—गुरुः विधाता गुरुः एव विष्णुः । गुरुः च साक्षात् मकरध्वजारिः । तथा यः गुरुः एतत् सकलम् जगत् । तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं । और गुरु साक्षात् कामदेव के शत्रु (शिव) हैं । इसी प्रकार जो गुरु इस सम्पूर्ण संसारस्वरूप हैं । उन श्री भास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

भावार्थ—गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु भगवान् हैं और गुरु ही साक्षात् शिव जी हैं । इसी प्रकार जो गुरु जी ही सम्पूर्ण संसार हैं अर्थात् लोक सर्वस्व हैं उन श्री भास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

विद्याप्रचारार्थमनेकरूपिणे
गुरुस्वरूपाय शिवाय सन्ततम्।
गुरो हि तुभ्यं भगवन् नमः प्रभो
श्रीभास्करानन्द ! दिगम्बराय ते ॥ ७ ॥

अन्वयः—गुरो भगवन् प्रभो श्रीभास्करानन्द। विद्या-प्रचारार्थम् अनेकरूपिणे गुरुस्वरूपाय तुभ्यम्। शिवाय दिगम्बराय ते सन्ततम् नमः ॥ ७ ॥

अन्वयार्थं—हे गुरो, हे भगवन्, हे प्रभो, हे श्रीभास्करानन्द जी महाराज !। विद्या के प्रचार के लिए अनेक रूपधारण करने वाले गुरुस्वरूप आपको। तथा शिवस्वरूप दिगम्बर—आपको सदा नमस्कार है ॥ ७ ॥

भावार्थं—हे गुरो, हे भगवान्, हे प्रभो, हे श्रीभास्करानन्दजीमहाराज ! आपने ब्रह्मविद्या के प्रचार के लिए अनेक रूप धारण किए हैं अर्थात् कभी शिष्य का रूप और कभी गुरु का रूप धारण किया है एसे कृपालु गुरुस्वरूप और शिवरूप दिगम्बर आपको सदा नमस्कार है ॥ ७ ॥

नमोऽस्तु नव्याकृतये नवाय च
परार्थरूपाय च चिद्घनाय ते।
समस्तजाड्यान्धविभेदभानवे
श्रीभास्करानन्दगुरुस्वरूपिणे ॥ ८ ॥

अन्वयः—नव्याकृतये नवाय च। परार्थरूपाय चिद्घनाय च। समस्तजाड्यान्धविभेदभानवे। श्रीभास्करानन्दगुरुस्वरूपिणे ते नमः अस्तु ॥ ८ ।

अन्वयार्थ—जिनकी आकृति नवीन है और नव हैं। दूसरों के उपकार के लिए जिन्होंने स्वरूप धारण किया है और स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं। और जो सब अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करने के लिए सूर्यनारायण हैं। ऐसे श्रीभास्करानन्द गुरुस्वरूप को नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिनका रूप नवीन है और जो नवीन वस्तु के कारण हैं अर्थात् जिनकी कृपा से ही नवीन वस्तु होती है और जिन्होंने परोपकार के लिए रूप धारण किया है, जो स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं और अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश रकने के लिए सहस्रकिरण सूर्यनारायण हैं—ऐसे श्री भास्करानन्द गुरु स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ८ ॥

स्वभक्ततन्त्राय　　स्वतन्त्ररूपिणे
　　सदा　　दयाक्लृप्तशरीरधारिणे ।
भव्यात्मनां　भव्यस्वरूपिणे　तथा
　　श्रीभास्करानन्दपरात्मने　　नमः ॥ ९ ॥

अन्वयः—स्वभक्ततन्त्राय स्वतन्त्ररूपिणे । सदा दयाक्लृप्त-शरीरधारिणे । तथा भव्यात्मनाम् भव्यस्वरूपिणे । श्रीभास्करा-नन्दपरात्मनेनमः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—जो अपने भक्तों के अधीन हैं और स्वाधीनरूप हैं। सदा दया-युक्त शरीर को धारण किए हुए हैं। इसी प्रकार कल्याणवालों के भी कल्याण स्वरूप हैं। ऐसे श्री भास्करानन्द परब्रह्म को नमस्कार है ॥ ९ ॥

भावार्थ—वे अपने भक्तों के अधीन हैं अर्थात् भक्त लोगों के मनोरथ को पूर्ण करते हैं और जो स्वयं स्वतन्त्र हैं स्व-अधीन हैं—अर्थात् अपनी इच्छानुसार कार्य करते हैं। वे सदा दयावान् शरीर को धारण किए हैं। इसी प्रकार जो कल्याण चाहने वालों के लिए कल्याणरूप हैं—ऐसे श्री भास्करानन्द, परब्रह्म को नमस्कार है ॥ ९ ॥

सदा ज्ञानिनां ज्ञानरूपो हि यश्च
प्रकाशस्वरूपस्तथा भास्वतां वै ।
विमर्शात्मनां यो विमर्शस्वरूपो
गुरुं तं यतिं भास्करानन्दमीडे ॥ १० ॥

अन्वयः—यः च हि ज्ञानिनाम् ज्ञानस्वरूपः । तथा भास्वताम् प्रकाशस्वरूपः वै । यः विमर्शात्मनाम् विमर्शस्वरूपः । तम् गुरुम् यतिम् भास्करानन्दम् सदा ईडे ॥ १० ॥

अन्वयार्थ—जो ज्ञानियों के लिए ज्ञान-स्वरूप हैं, इसी प्रकार प्रकाश स्वरूप हैं, जो विचारस्वरूप हैं—उन गुरु यति श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूँ ॥ १० ॥

भावार्थ—जो ज्ञानियों के ज्ञान स्वरूप हैं और प्रकाश वालों के लिए प्रकाशस्वरूप अर्थात् प्रकाशक हैं और विचारकरने वालों के विचार हैं—ऐसे गुरु यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूँ ॥ १० ॥

पुरस्तात् तथा पार्श्वयोः पृष्ठदेशं
तथोद्ध्र्वाध एवं सदा तं नमामि ।
स सच्चित्स्वरूपः शिवं सन्दधातु
गुरुर्भास्करानन्दरूपः प्रसन्नः ॥ ११ ॥

अन्वयः—पुरस्तात् तथा पार्श्वयोः (सहितम्) पृष्ठदेशम् । तथा ऊर्द्ध्वाधः एवं सदा तम् नमामि । सत्-चित्-स्वरूपः भास्करानन्दरूपः सः गुरुः । प्रसन्नः (भूत्वा) शिवम् सन्द-धातु ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ—(उस महात्मा के) अग्र भाग को वैसे दोनों पार्श्व को उसके सहित पीछे के भाग को । और ऊपर नीचे के भाग को । इस प्रकार उनको सदा प्रणाम करता हूं । सत्-चित्-स्वरूप श्रीभास्करानन्द-स्वरूप वह गुरु । प्रसन्न (होकर) कल्याण करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान उक्त महात्मा के अग्र भाग को वैसे ही दोनों पार्श्व भाग को, पीछे के भाग को ऊपर नीचे के भाग को अर्थात् महाराज के सब उत्तम अङ्गों को सदा प्रणाम करता हूँ । सत्-चित्-स्वरूप श्री भास्करानन्द गुरु जी महाराज प्रसन्न होकर कल्याण करें ॥ ११ ॥

अखण्डबोधरूपाय आनन्दवनचारिणे ।
नमः परमहंसाय भास्करानन्दमूर्त्तये ।। १२ ।।

अन्वयः——अखण्डबोधरूपाय । आनन्दवनचारिणे परमहंसाय । भास्करानन्दमूर्त्तये नमः ।। १२ ।।

अन्वयार्थ—परिपूर्ण ज्ञान-स्वरूप । आनन्द वन में विचरनेवाले परमहंस । श्री भास्करानन्दमूर्ति को नमस्कार है ।। १२ ।।

भावार्थ—परिपूर्ण ज्ञान-रूप अर्थात् जिनको ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान पूर्ण रूप से प्राप्त हुआ है और आनन्दवन में विचर रहे हैं अर्थात् ब्रह्मानन्द में मग्न हैं या आनन्दबाग में रहते भी हैं। उन परमहंस श्री भास्करानन्द जी को नमस्कार करता हूँ ।। १२ ।।

अपारसंसारमिमं तरीतुं सम्प्रार्थये बद्धकरः सदाऽहम् ।
श्रीभास्करानन्दयतीन्द्रमत्र गुरुं महादेवप्रसाददासः ।।१३।।

अन्वयः—अहम् महादेवप्रसाददासः अत्र सदा बद्धकरः । इमम् अपारसंसारम् तरीतुम् । श्रीभास्करानन्दयतीन्द्रम् गुरुम् सम्प्रार्थये ।। १३ ।।

अन्वयार्थ—मैं महादेवप्रसाद दास यहाँ सदा अञ्जलि बाँधकर । इस अपार संसार के तरने के लिए । श्रीभास्करानन्द जी यतीन्द्र गुरु जी को अच्छी प्रकार से प्रार्थना करता हूँ ।। १३ ।।

भावार्थ—मैं महादेवप्रसाद, गुरु का दास सदा हाथ जोड़ कर इस अपार संसार से पार जाने के लिए श्री भास्करानन्द जी यतीन्द्र गुरु जी की सम्यक् रीति से प्रार्थना करता हूँ ।। १३ ।।

प्रसादार्थं यत्नात् तव नुतिरियं यद्यपि कृता
विचारेऽद्येयं व्यर्था पृथुरपि विभातीश मम तु ।
गुणो यस्मिन् यादृक् कथयति जनश्चेत् तदधिकं
प्रसादः स्यात् तस्मिन्निह तु नहि तस्यास्त्यवसरः ।।१४।।

अन्वयः—हे ईश ! यद्यपि तव प्रसादार्थम् यत्नात् इयम् नुतिः कृता । पृथुः अपि इयम् अद्य मम विचारे तु व्यर्था विभाति । (यतः) यस्मिन् यादृक् गुणः स्यात् जनः तदधिकम् कथयति चेत् तस्मिन् प्रसादः । इह तु तस्य अवसरः न अस्ति ।। १४ ।।

अन्वयार्थ—हे स्वामिन् ! यद्यपि आप की प्रसन्नता के लिए बड़े यत्न से यह स्तुति की गई है । बड़ी भी (यह) आज मेरे विचार में व्यर्थ मालूम पड़ती हैं । (क्योंकि) जिसमें जितना गुण होवे मनुष्य उससे अधिक कहे तो उस पर वह प्रसन्न होता है । यहाँ तो उसका अवसर ही नहीं है ।। १४ ।।

भावार्थ—हे स्वामी जो महाराज ! यद्यपि आपको प्रसन्न करने के लिए बड़े परिश्रम से यह स्तुति की गई है । यह बड़ी भी है । पर विचारते हैं तो यह शंका होती है कि यह स्तुति वृथा सी है । क्योंकि जिसमें जितना गुण हो—उससे यदि उसके अधिक गुण का वर्णन किया जाय तो वह प्रसन्न होता है—परन्तु आपके गुण तो अनन्त है । यह स्तुति आपके गुण-समुद्र के एक बिन्दु के समान भी नहीं हो सकती । अतः इससे अधिक गुणों का वर्णन कैसे हो सकेगा अर्थात् उससे अधिक गुणों का वर्णन नहीं हो सकता ।। १४ ।।

अतो यच्चाञ्चल्यात् तव गुणगणानां हि विभव
मबुध्वैतद्यत्नात् कृतमिह मया तत्करणतः।
सुबध्याहं पाणी कृतनतशिरः प्रार्थय इति
यतीश क्षन्तव्यं वितर मयि दृष्टिं सकरुणाम् ।।१५।।

अन्वयः—अतः हे यतीश ! तव गुणगणानाम् विभवम् अबुध्वैव। चाञ्चल्यात् मया इह यत् तत् करणतः कृतम्। तत् क्षन्तव्यम् मयि सकरुणाम् दृष्टिम् वितर। इति अहम् पाणी सुबध्य कृतनतशिरः प्रार्थये।। १५ ।।

अन्वयार्थ—इस कारण हे यतीन्द्र जी आप के गुण गणों के ऐश्वर्य को बिना जाने ही। चञ्चलता से यहाँ मैंने जो आप के प्रसन्न होने के लिए (स्तुति) की है। उसे क्षमा कीजिए मुझ पर दया युक्त दृष्टि कीजिए। यह मैं हाथ जोड़ कर शिर झुकाकर प्रार्थना करता हूँ।। १५ ।।

भावार्थ—इससे हे यतीन्द्र जी महाराज ! आपके गुणों के ऐश्वर्य्य को विना जाने मैंने चञ्चलता से आपको प्रसन्न करने के लिए जो स्तुति की है उसे यह भोला भक्त है—ऐसा जान क्षमा कीजिए। मुझ पर दया-दृष्टि कीजिए। मैं हाथ जोड़ कर शिर झुका कर यही प्रार्थना करता हूँ।। १५ ।।

सदा स्वे पादाब्जे मम कुरु रतिं पावनतमे
प्रसादस्ते यस्मात् तदुपदिश मां त्वं करुणया।
न जानेऽहं किञ्चित् चरणरजसस्ते समधिकं
प्रसीद त्वं तस्माच्छरणद न चान्यच्च शरणम् ॥१६॥

इति श्रीमहादेवप्रसादचतुर्धुरीणकृतं यतीन्द्रगुरुस्तोत्रं समाप्तम्

अन्वयः—पावनतमे स्वे पादाब्जे सदा मम रतिम् कुरु। यस्मात् ते प्रसादः तत् त्वं करुणया माम् उपदिश। अहम् ते चरणरजसः समधिकम् किञ्चित् न जाने हे। शरणद ! अन्यत् शरणम् च न। तस्मात् त्वम् प्रसीद ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ—अतिपुनीत आपके चरण-कमलों में सदा मेरी प्रीति हो—ऐसा कर दें। जिससे आप की प्रसन्नता हो उसे आप कृपा करके उपदेश कीजिए। हम आपके चरण-रज से अधिक कुछ नहीं जानते। और हे रक्षक ! दूसरा कोई रक्षा करने वाला नहीं हैं। इससे आप प्रसन्न होइए ॥ १६ ॥

भावार्थ—ऐसी कृपा कीजिए जिससे अतिपुनीत आपके चरण कमलों में मेरी प्रीति सदा अधिक होती जाय और जिससे आप प्रसन्न होते हों वह उपदेश कीजिए। क्योंकि मैं आपके चरण-रज से अधिक और कुछ नहीं जानता और हे जगत् के रक्षा करने वाले ! आपकी शरण के सिवाय (अन्य) और कोई शरण नहीं है—इससे आप प्रसन्न होइए ॥ १६ ॥

इति श्रीमहादेवप्रसाद चौधुरी-रचित श्रीयतीन्द्रगुरुस्तोत्र का भावार्थ समाप्त हुआ

श्रीगणेशाय नमः

श्रीयतीन्द्रस्तोत्रम्

ज्ञात्वा वेदार्थसंघं मुनिवररचितं प्राप्तबोधः स विज्ञो
मत्वा चालीकमेतत् सकलमिह जगद् योगमार्गैकलग्नः ।
ध्यायन् तं देवमाद्यं भवभयहरणं भास्करानन्दविद् यः
दुर्गायाः पूर्वभागे विलसति विपिने काशिकायां यतीन्द्रः ॥ १ ॥

अन्वयः—यः मुनिवररचितम् वेदार्थसंघम् ज्ञात्वा प्राप्तबोधः विज्ञः । भास्करानन्दविद् सः यतीन्द्रः इह एतत् सकलम् जगत् अलीकम् मत्वा । योगमार्गैकलग्नः भवभयहरणम् तम् आद्यम् देवम् ध्यायन् । काशिकायाम् दुर्गायाः पूर्वभागे विपिने विलसति ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—जो मुनिश्रेष्ठों से रचे गए वेदार्थ-समूह को जानकर प्राप्त हुआ है बोध जिसको ऐसे विवेकी । वह विद्वान् यतीन्द्र श्रीभास्करानन्द जी यहाँ सब संसार को मिथ्या मान । केवल योग मार्ग में (मन) लगाकर संसार-भय को दूर करनेवाले उस आदि देव का ध्यान करते हुए काशी में दुर्गाकुण्ड के पूर्व आनन्दबाग में शोभित हो रहे हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—मुनियों में श्रेष्ठ व्यास जी के रचित वेदार्थ-समूह अर्थात् वेदान्त को जानकर उसके विचार से ज्ञानवान् हो विवेकी विद्वान् वह यतीन्द्र श्रीभास्करानन्द जी महाराज—यहाँ इस सब संसार को मिथ्या मान, केवल योग में लगकर संसार भय को अर्थात् मायाजाल को दूर करनेवाले उस आदि परमेश्वर का ध्यान करते हुए काशी में दुर्गाकुण्ड के पूर्व आनन्द-बाग में सुशोभित हो रहे हैं ॥ १ ॥

त्यक्त्वा स्त्रीपुत्रवर्गं सकलगुणयुतं मोहरूपं विशालं
पुण्यक्षेत्राण्यशेषाण्यखिलभुवि गतान्याऽऽप्तकामो ददर्श ।
स्मृत्वा यो देवदेवं निगमफलमयं भास्करानन्दयोगी
काश्यामानन्दकुञ्जे निवसति विपिने सोऽयमानन्दकन्दः ।।२।।

अन्वयः—यः सकलगुणयुतम् विशालम् मोहरूपम् स्त्री-पुत्रवर्गम् त्यक्त्वा । निगमफलमयम् देवदेवम् स्मृत्वा आप्त-कामः । अखिलभुवि गतानि अशेषाणि पुण्यक्षेत्राणि ददर्श । आनन्दकन्दः सः अयम् भास्करानन्दयोगी काश्याम् आनन्द-कुञ्जे विपिने निवसति ।। २ ।।

अन्वयार्थ—जिसने सब गुणों से युक्त (इसी से) बड़े मोहरूप स्त्री-पुत्र आदि को छोड़ कर । वेदफल-स्वरूप देवों के देव का स्मरण कर सब कामनाओं को पाकर । सम्पूर्ण पृथ्वी के सब पुण्य-स्थानों का दर्शन किया है । आनन्दकन्द वह श्रीभास्करानन्द योगी जी महाराज काशी में आनन्द-कुञ्जवन में निवास कर रहे हैं ।। २ ।।

भावार्थ—जो सब गुणोंसे युक्त हैं और इसीसे बड़े मोहस्वरूप जो स्त्री-पुत्र आदि हैं, उन सबको छोड़ कर और वेदफल-स्वरूप देवोंके देव परमेश्वर का स्मरण कर सम्पूर्ण कामना को जिसने पाया है—पृथ्वी के सब पुण्य तीर्थों का दर्शन किया है, आनन्दस्वरूप वह श्री भास्करानन्द योगी जी काशी में आनन्दबाग में निवास कर रहे हैं।। २।।

निर्जित्येन्द्रियवैरिपक्षनिवहं यस्य प्रसादात् सदा
मोहध्वान्तविदूरशुभ्रमनसः सन्तः सुखं शेरते।
यं दृष्ट्वा कृतकृत्यमत्र मनुजाः स्वात्मानमेवानिशं
मन्यन्ते स दिगम्बरो विजयते श्रीभास्करानन्दवित् ।। ३ ।।

अन्वयः—सन्तः यस्य प्रसादात् इन्द्रियवैरिपक्षनिवहम् निर्जित्य। सदा मोहध्वान्तविदूरशुभ्रमनसः सुखम् शेरते। अत्र मनुजाः यम् दृष्ट्वा एव स्वात्मानम् कृतकृत्यम् अनिशम् मन्यन्ते। स दिगम्बरः भास्करानन्दवित् विजयते ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—सन्त जन जिसके प्रसाद से इन्द्रियरूपी शत्रु-समूह को जीतकर। सदा अज्ञान के अन्धकार से दूर उज्ज्वलचित्त होकर सुख से सोते हैं। (और) संसार में मनुष्य लोग जिसका दर्शन मात्र करके अपने को सदा कृतार्थ मानते है। वह दिगम्बर श्रीभास्करानन्द जी सब उत्कर्ष के साथ विराजमान हैं॥ ३ ॥

भावार्थ—सन्त लोग जिसकी कृपा से इन्द्रियरूपी अपने शत्रु के समूह को जीतकर और सदा अज्ञानरूपी अन्धकार से रहित उज्वलचित्त वाले होकर सुख से सोते हैं अर्थात् निश्चिन्त रहते हैं और मनुष्य लोग जिनका केवल दर्शन करके ही अपने को सदा कृतकृत्य मानते हैं वह विद्वान् दिगम्बर श्रीभास्करानन्द जी यहाँ समस्त उत्कर्ष के साथ विराजमान हैं॥ ३ ॥

मायामात्रविनिर्मितं हि भुवनं मत्वा स विज्ञेश्वरो
धृत्वा तत् परमं पदं हृदि मुदा तुर्याश्रमे संस्थितः ।
यश्चेन्द्रादिसमस्तदेवपदवीं तुच्छां सदा मन्यते
सोऽयं संविदधातु वाञ्छितफलं श्रीभास्करानन्दवित् ।। ४ ।।

अन्वयः—सः विज्ञेश्वरः भुवनं मायामात्रविनिर्मितम् मत्वा । हृदि मुदा तत् परमम् पदम् धृत्वा तुर्याश्रमे संस्थितः । यश्च सदा इन्द्रादिसमस्तदेवपदवीम् तुच्छाम् मन्यते । सः अयम् श्रीभास्करानन्दवित् वाञ्छितफलम् संविदधातु ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—वह विद्वानों में श्रेष्ठ (स्वामी जो) संसार को माया से ही रचा गया है--ऐसा मान । हृदय में हर्ष से उस परम पद को धारण कर चौथे आश्रम में स्थित हुए । और जो सदा इन्द्र आदि देवताओं की पदवी को तुच्छ मानते हैं । वहीं विद्वान् श्रीभास्करानन्द जी मनोवाञ्छित फल को दें ।। ४ ।।

भावार्थ—विद्वानों में श्रेष्ठ उस यतीन्द्र ने संसार को माया से रचा गया हैं अर्थात् मिथ्या है—ऐस मान करकेअपने हृदय में हर्ष से उस परमपद को धारण करके चतुर्थ आश्रम अर्थात् संन्यास को ग्रहण किया है और वे सदा इन्द्र आदि देवताओं की पदवी को तुच्छ मानते हैं वे ही विद्वान् श्रीभास्करानन्द जी मनोवाञ्छित फल को देवें ।। ४ ।।

क्षिप्रं सिद्धिमवाप्नुवन्ति निखिलां यत्संस्मृतेः सज्जना
यं सर्वे प्रणमन्ति भूपतिवराः स्वाभीष्टसिद्धयै मुदा ।
विज्ञाः पुण्यतमं चरित्रमनिशं गायन्ति यस्याखिलाः
सोऽयं संविदधातु वाञ्छितफलं श्रीभास्करानन्दवित् ।। ५ ।।

अन्वयः—सज्जनाः यत्संस्मृतेः निखिलाम् सिद्धिम् क्षिप्रम् अवाप्नुवन्ति । यम् सर्वे भूपतिवराः स्वाभीष्टसिद्धयै मुदा प्रणमन्ति । अखिलाः विज्ञाः यस्य पुण्यतमम् चरित्रम् अनिशम् गायन्ति । सः अयम् श्रीभास्करानन्दवित् वाञ्छितफलं संविदधातु ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—सज्जन लोग जिसका स्मरण करके सब सिद्धि को शीघ्र पाते हैं। जिसको सब राजा लोग अपने इष्ट की सिद्धि के लिए आनन्द से प्रणाम करते हैं। सब विद्वान् जिसके पुण्य-चरित का सदा गान करते हैं। वही यह विद्वान् श्रीभास्करानन्द वाञ्छित फल को दें ।। ५ ।।

भावार्थ—सज्जन लोग जिसके स्मरण करने ही से सब सिद्धि को शीघ्र पा जाते हैं और जिसे सब राजा लोग अपने इष्ट की सिद्धि के लिए आनन्द-युक्त होकर प्रणाम करते हैं। और सब विद्वान् लोग जिसके अतिपुनीत चरित्र को सदा गाया करते हैं वही यह विद्वान् श्री भास्करानन्द मुझे वाञ्छित फल को दें ।। ५ ।।

सुभुक्तिमुक्तिदायकं यतीन्द्रमत्र भास्करा-
दिनन्दनामकं शिवस्वरूपमाशुकामदम् ।
नरेन्द्रसेव्यसत्पदं वरप्रसूनमालकं
गुरुं भजाम्यहं सदा स्वभक्तवृन्दपालकम् ।। ६ ।।

अन्वयः—अहम् अत्र सुभुक्तिमुक्तिदायकम् नरेन्द्रसेव्य सत्पदम् । वरप्रसूनमालकम् स्वभक्तवृन्दपालकम् । आशु कामदम् भास्करादिनन्दनामकम् शिवस्वरूपम् । यतीन्द्रम् गुरुम् सदा भजामि ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—मैं यहाँ सुन्दर भोग और मोक्ष के दाता, राजा लोगों से सेवित चरण । उत्तम पुष्पों की माला वाले, अपने सब भक्तों के रक्षक । शीघ्र मनोरथ पूर्ण करने वाले भास्कर शब्द है आदि में जिसके ऐसे आनन्द नाम वाले (अर्थात् भास्करानन्द नामधारी) शिवस्वरूप यतीन्द्र गुरु का सदा भजन करता हूँ ।। ६ ।।

भावार्थ—मैं पृथ्वी पर सुन्दर भोग-पदार्थ और मोक्ष के दाता, राजा-महाराजों से सेवित चरण, उत्तमोत्तम फूलों की माला वाले अपने भक्तजनों के रक्षक, अतिशीघ्र कामना को देने वाले, भास्करानन्द नाम के शिवस्वरूप यतीन्द्र गुरु जी का सदा भजन करता हूँ ।। ६ ।।

स्वभासया विभासयन् स्वभक्तहृत्सरोरुहं
सुदुर्लभं च तद्विभोः परं पदं प्रदर्शयन् ।
सदा विनोदकानने चरन्तमत्र भास्करा-
दिनन्दनामकं परं गुरुं नमामि सन्ततम् ।। ७ ।।

अन्वयः—अहम् अत्र स्वभासया स्वभक्तहृत्सरोरुहम् विभासयन् । च विभोः सुदुर्लभं तत् परम् पदम् प्रदर्शयन् । सदा विनोदकानने चरन्तम् भास्करादिनन्दनामकम् परम् गुरुम् सन्ततम् नमामि ।। ७ ।।

अन्वयार्थ—मैं यहाँ, अपने प्रकाश से अपने भक्तों को हृदय-कमल को विकसित करते हुए और सर्वव्यापी के अतिदुर्लभ उस परमपद को दिखाते हुए। सदा आनन्द वन में विचरने वाले भास्करानन्द नाम के परम गुरुजी को सदा नमस्कार करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—अपने तेज से भक्तजनों के हृदय कमल को प्रफुल्लित करते हुए और सर्वव्यापी परब्रह्म के अतिदुर्लभ उस परमपद को दिखाते हुए, सदा आनन्द वन में विचरते हुए श्रीभास्करानन्द नाम के परमगुरु जी को मैं सदा नमस्कार करता हूँ ।। ७ ।।

हे दीनबन्धुभगवन् भवसागरेऽस्मिन्
मग्नं सुमोहतमसावृतचेतसं माम् ।
नो चेत् समुद्धरसि वै स्वकृपाकटाक्षै-
र्दासोऽहमत्र वद कं शरणं व्रजामि ।। ८ ।।

इति श्रीमिथिलामहीसुरेण ज्योतिर्वित्सोनेलालशर्मणा
विरचितं श्रीयतीन्द्रस्तोत्रं सम्पूर्णम्

अन्वयः—हे दीनबन्धुभगवन् ! अस्मिन् भवसागरे मग्नम् । सुमोहतमसा वृतचेतसम् माम् । स्वकृपाकटाक्षैः नो समुद्धरसि चेत् । वै वद । दासः अहम् अत्र कं शरणम् व्रजामि ।। ८ ।।

अन्वयार्थ—हे दीनों के बन्धु भगवन् ! इस भवसागर में मग्न और अति मोहरूपी अन्धकार से आवृत्त मेरा चित्त । अपने कृपा कटाक्ष से उद्धार न कीजिए तो। कहिए। दास मैं यहाँ किसको शरण जाऊँ ।। ८ ।।

भावार्थ—हे दीन जनों के वन्धु, भगवान् श्रीभास्करानन्दजी महाराज ! इस संसार समुद्र में डूबे और अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्ध मुझको अपनी कृपा के कटाक्ष से न उबारेंगे तो कहिए आपका दास मैं इस संसार में किसकी शरण जाऊँ ।। ८ ।।

इति श्रीमैथिलब्राह्मणज्योतिर्विद्
सोनेलालविरचित यतीन्द्रस्तोत्र का भावार्थ पूर्ण हुआ

श्रीभास्करानन्दाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः

त्रयीसिद्धसत्कर्मधूताघसंघं
सदा संयमाभ्यासवश्येन्द्रियं प्राक् ।
ततः श्रौतयुक्त्या भवे संविरक्तं
भजे भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ॥ १ ॥

अन्वयः—त्रयीसिद्धसत्कर्मधूताघसंघम् । प्राक् सदा संयमाभ्यासवश्येन्द्रियम् । ततः श्रौतयुक्त्या भवे संविरक्तम् । ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—वेदोक्त उत्तम कर्मों से जिस के पाप-समूह नष्ट हो गए हैं। पहिले से सदा संयम के अभ्यास करने से जिनकी इन्द्रियाँ वश में हो रही हैं। इसी कारण श्रुति की युक्ति द्वारा जो इस संसार में विरक्त हैं। ऐसे स्तुति के योग्य मुनियों में श्रेष्ठ श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—वेदों में कहे गए कर्मों के करने से जिसके सब पाप नष्ट हों गए हैं, पहिले सदा किए गए ध्यान, धारणा, समाधि से जिनकी इन्द्रियाँ वश में हो रही हैं और अब श्रुति की युक्तियों से संसार से विरक्त हैं—ऐसे स्तुति करने के योग्य मुनियों में श्रेष्ठ श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ १ ॥

महावाक्यतः सारमाकृष्यभावं
भवच्छेदबीजं सुखस्यैकधाम ।
स्थितं निर्विकल्पं सदा शान्तमूर्ति
भजे भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ।। २ ।।

अन्वयः—महावाक्यतः भवच्छेद बीजम् सारम् भावम् आकृष्य निर्विकल्पम् स्थितम् । सुखस्य एकधाम सदा शान्तमूर्त्तिम् ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ।। २ ।।

अन्वयार्थ—महावाक्य से संसार के नाश का बीज सारांश भाव को आकर्षण करके निर्विकल्प जो स्थित हैं। (ऐसे) । सुख के मुख्यस्थान शान्त मूर्त्ति स्तुति करने के योग्य मुनीश्वर श्रीभास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—'तत्त्वमसि' इत्यादि श्रुति के महावाक्यों से संसार के आवागमन का नाश करने वाले अर्थात् मुक्ति-दायक सारांश को निकाल कर यतीन्द्रजी निर्विकल्प अर्थात् ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान इत्यादि विभाग से रहित स्थित हैं। सुख के ऐसे मुख्यधाम, शान्त-स्वरूप, स्तुति के योग्य मुनिश्रेष्ठ श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ २ ॥

भवाब्धौ निमग्नानविज्ञान् भयार्त्तान्
समुद्धर्त्तुकामो य आस्तेऽविमुक्ते ।
निराशं कृपालुं तमाशावसानं
भजे भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ।। ३ ।।

अन्वयः—यः भवाब्धौ निमग्नान् भयार्त्तान् अविज्ञान् समुद्धर्त्तुकामः अविमुक्ते आस्ते । तम् निराशम् कृपालुम् आशावसानम् ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—जो संसार रूपी समुद्र में बूड़े हुए भयभीत अज्ञानियों के उद्धार करने की इच्छा से काशी जी में रहते हैं। उन आशा—रहित, कृपालु, दिगम्बर, स्तुति के योग्य मुनीश्वर श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—संसार-समुद्र में बूड़े हुए भयभीत अज्ञानियों के उद्धार करने के लिए जो काशी जी में वास कर रहे हैं—उन आशा-रहित अर्थात् पूर्ण-काम, कृपालु, दिगम्बर और स्तवनीय मुनिश्रेष्ठ श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ ३ ॥

कलौ लोकशिक्षावतारस्वरूपं
सुबुद्धात्मतत्त्वं तदेकाग्रचित्तम् ।
समानारिमित्रं हृतर्त्तुप्रभावं
भजे भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ।। ४ ।।

अन्वय:—कलौ लोकशिक्षावतारस्वरूपम् । सुबुद्धात्मतत्त्वम् तदेकाग्रचित्तम् । समानारिमित्रम् हृतर्त्तुप्रभावम् । ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—कलियुग में लोगों की शिक्षा के लिए अवतार स्वरूप हैं। भलीभाँति आत्मतत्त्व को जानते हैं और उस आत्मविचार में जिनका चित्त लगा रहत्ता है। शत्रु-मित्र को जो एक सा समझते हैं और जिनको ऋतु का प्रभाव नहीं व्यापता। ऐसे स्तुति योग्य मुनीश श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ।। ४ ।।

भावार्थ—कलियुग में लोगों की शिक्षा के लिए जिन्होंने अवतार लिया है, भलीभाँति आत्मतत्त्व को जो जानते हैं और उसी परमात्मा के चिन्तन में जिनका चित्त लगा रहता है, शत्रु-मित्र को एक सी दृष्टि से जो देखते हैं और जिन पर ऋतु अर्थात् ग्रीष्म, वर्षा, शरत् आदि का प्रभाव नहीं व्यापता अर्थात् शीत समय में भी वस्त्र तक धारण नहीं करते—उन स्तुति के योग्य मुनीश्वर श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ।। ४ ।।

उदेतोच्छया यस्य गूढात्मभावो
नृणां मानसेऽज्ञानरुद्धात्मनां तु ।
व्यरंसीदविद्याप्रभावो यतस्तं
भजे भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ।। ५ ।।

अन्वयः—यस्य इच्छया अज्ञानरुद्धात्मनाम् तु । नृणाम् मानसे गूढात्मभावः उदेति । यतः अविद्याप्रभावः व्यरंसीत् । तं ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—जिनकी इच्छा से, अज्ञान से, आवृत चित्त वाले भी। मनुष्यों के मन में अतिकठिन आत्मज्ञान उदय होता है। जिनसे अज्ञान का प्रभाव नष्ट हो जाता है। उन स्तुति योग्य मुनीश श्रीभास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिनकी इच्छामात्र से अज्ञानी मनुष्यों के हृदय में अति कठिन आत्मज्ञान का उदय होता है और जिनकी कृपा से अविद्या का अर्थात् माया का प्रभाव नष्ट हो जाता है—ऐसे स्तुति के योग्य मुनीश्वर श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ ५ ॥

भवोद्भूतभोगं सुरेशस्य लोकं
त्रिवर्गं च तुच्छं सदा मन्यते यः ।
पिबन्तं रसं ब्रह्मचिद्रूपमग्र्यं
भजे भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ।। ६ ।।

अन्वयः—यः सदा भवोद्भूतभोगम् सुरेशस्य लोकम् । त्रिवर्गम् च तुच्छम् मन्यते । अग्र्यम् चिद्रूपम् ब्रह्मरसम् पिबन्तम् । ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—जो सदा संसारोत्पन्न भोग को, इन्द्र लोक को। और धर्म-अर्थ-काम को तुच्छ मानते हैं। और सर्वश्रेष्ठ चित्स्वरूप ब्रह्मरस को पीते हैं। (उन) स्तुतियोग्य मुनीश श्रीभास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ।। ६ ।।

भावार्थ—जो सदा संसारी सुख को, इन्द्रादि देवलोक के सुख को, धर्म, अर्थ और काम को–तुच्छ मानते हैं अर्थात् ब्रह्मानन्द के आगे किसी भी लौकिक सुख को कुछ भी महत्त्व नहीं देते और सर्वश्रेष्ठ चित्-रूप ब्रह्मानन्द के रस का पान कर रहे हैं—उन स्तुतियोग्य मुनीश श्रीभास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ।। ६ ।।

यथा दाम्नि सर्पो यथा स्वप्नबोधो
मरौ वारि यद्वद् यथा चेन्द्रजालम् ।
तथा भ्रान्तिभूतं भवं प्रेक्षमाणं
भजे भास्करानन्दमोड्यं मुनीशम् ।। ७ ।।

अन्वयः—दाम्नि यथा सर्पः, यथा स्वप्नबोधः, यद्वद् मरौ वारि, यथा च इन्द्रजालम् । भवम् तथा भ्रान्तिभूतम् प्रेक्षमाणम् ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ।। ७ ।।

अन्वयार्थ—रसरी में जैसे सर्प (बुद्धि) जैसे स्वप्न का देखना, जैसे मृगतृष्णा में जल (बुद्धि) और जैसे इन्द्र जाल का (देखना मिथ्या है) इसी प्रकार संसार को भ्रम से उत्पन्न मानने वाले स्तुतियोग्य मुनीश श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—रस्सी को सर्प समझना जैसे भ्रम है, जैसे स्वप्न के समय का शिर कटना आदि भ्रम है अर्थात् मिथ्या है, मरुदेश में मृगतृष्णा में जल का दीख पड़ना भ्रम है और इन्द्रजाल का (तमाशा)—सब भ्रम स्वरूप है, इसी प्रकार संसार को भ्रम से उत्पन्न मानने वाले स्तुतियोग्य मुनीश श्रीभास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ।। ७ ॥

जगन्नश्वरं भोग आधेर्निदानं
चिदेका सतीत्येव नित्यं विचिन्त्यम् ।
इतीवेह विज्ञापयन्तं स्वकृत्या भजे
भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ।। ८ ।।

अन्वयः—जगत् नश्वरम्, भोगः आधेः निदानम् । एका चित् सती इत्येव नित्यम् विचिन्त्यम् । इह इतीव स्वकृत्या विज्ञापयन्तम् । ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ।। ८ ।।

अन्वयार्थ—जगत् नाशवान् है और सुख भोग आदि को उत्पन्न करने वाला है। एक चैतन्य ही सत् है। यही है नित्य विशेष चिन्तन करने योग्य जिनको। (और यहाँ मानो कि) इसी को अपने कार्यों से दिखा रहे हैं। ऐसे स्तुतियोग्य मुनीश श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—संसार, क्षण-क्षण में नाशवान् है और सुख-भोग बाद में आधि अर्थात् मानसी व्यवस्था उत्पन्न करता है। केवल चैतन्यरूप ईश्वर ही सत् है। इसी का सदा विशेष चिन्तन करनेवाले और संसार में इसी को जो अपने कर्मों से वे दर्शा रहे हैं—एसे स्तुति के योग्य मुनीश श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूँ ॥ ८ ॥

नमः परमहंसाय भास्करानन्दमूर्त्तये ।
भक्ताभीष्टप्रदायाऽऽशु साक्षाच्चैतन्यरूपिणे ॥ ९ ॥

अन्वयः—आशु भक्ताभीष्टप्रदाय साक्षात् चैतन्यरूपिणे । परमहंसाय भास्करानन्दमूर्त्तये नमः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—शीघ्र भक्तों को अभिलषित देनेवाले साक्षात् परब्रह्म स्वरूप । परमहंस श्री भास्करानन्द मूर्त्ति को नमस्कार है ॥ ९ ॥

भावार्थ—अति शीघ्र भक्तों के मनोरथ के पूर्ण करने वाले, प्रत्यक्ष चिदानन्द-स्वरूप परमहंस श्रीभास्करानन्द तपोमूर्त्ति को नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

इति श्रीगंगाचरणवेदान्तवागीशेन विरचितं
श्री भास्करानन्दाष्टकं सम्पूर्णम्

श्रीगुर्वष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः

काशीनिवासं यशसा प्रकाशं सर्वाघनाशं शरणागतानाम् ।
ब्रह्मस्वरूपं परमावधूतं तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ।।१।।

अन्वयः—काशीनिवासं यशसा प्रकाशम् । शरणागतनाम् सर्वानाशम् । ब्रह्मस्वरूपम् परमावधूतम् । तम् भास्करानन्द-गुरुम् नमामि ।। १ ।।

अन्वयार्थ—काशी जी के निवासी, यश से प्रकाशमान । और शरणागत के सब पापों का नाश करने वाले । ब्रह्मस्वरूप अवधूत वेष । प्रसिद्ध भास्करानन्द गुरु को प्रणाम करता हूँ ।। १ ।।

भावार्थ—काशी जी में वास कर रहे हैं, यश से जो सर्वत्र प्रकाशमान हो रहे हैं और शरण में आए हुए मनुष्यों के सब पापों का नाश कर देते हैं—ऐसे ब्रह्मस्वरूप अवधूत वेषधारी प्रसिद्ध श्रीभास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूँ ।। १ ।।

यद्दर्शनं यत्स्मरणं यदर्चा
चेतो विशुद्धं कुरुते जनानाम् ।
भवापवर्गञ्च ततो विधत्ते
तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ।। २ ।।

अन्वयः—यद्दर्शनम् यत् स्मरणम् यदर्चा जनानाम् चेतो विशुद्धम् कुरुते । ततः भवापवर्गम् च विधत्ते तम् भास्करानद-गुरुम् नमामि ।। २ ।।

अन्वयार्थ—जिनका दर्शन, जिनका स्मरण और जिनका पूजन मनुष्य के चित्त को निर्मल कर देता है और उसके अनन्तर संसार से मुक्त भी कर देता है। उन श्री भास्करानन्द गुरु को प्रणाम करता हूँ ।। २ ।।

भावार्थ—जिनका दर्शन, जिनका पूजन अथवा जिनका स्मरण करना मनुल्यों के चित्त को शुद्ध अर्थात् पाप रहित कर देता है और साथ ही साथ संसार से उसे मुक्त भी कर देता है—ऐसे श्री भास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूँ ।। २ ।।

चेतो यदीयं विषयेष्वसक्तं
नक्तंदिवं ब्रह्मसुखावमग्नम् ।
निर्वातदीपार्चिरिवाप्रकम्पं
तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ।। ३ ।।

अन्वयः—यदीयम् चेतः विषयेषु असक्तम् । नक्तंदिवम् ब्रह्मसुखावमग्नम् । निर्वातदीपर्चिः इव अप्रकम्पम् तम् गुरुम् भास्करानन्दम् नमामि ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—जिनका चित्त विषयों में नहीं लगा है । दिन रात ब्रह्मानन्द सुख में मग्न है । निर्वात (स्थान में स्थित) दीपक की टेम के समान कंप रहित है । उन श्रीभास्करानन्द गुरु जो को प्रणाम करता हूँ ।। ३ ।।

भावार्थ—जिनका मन विषयों से विरक्त है, दिन-रात ब्रह्मानन्द सुख में मगन रहता हैं और निर्वात स्थान में जलते हुए दीपक की लपक, टेम के समान निष्कम्प अर्थात् स्थिर जिसका चिद्बोध सदा प्रकाशमान है, उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को मैं प्रणाम करता हूँ ।। ३ ।।

चेतश्चरी तृप्तिकरी सदक्षणा-
मक्षोभकर्त्री सुहृदां दयार्द्रा ।
मूर्त्तिर्यदीया बुधवन्दनीया
तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ ४ ॥

अन्वयः—यदीया मूर्त्तिः दयार्द्रा सुहृदाम् चेतश्चरी । अक्षोभ-कर्त्री सदक्षणाम् तृप्तिकरी । बुधवन्दनीया तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—जिनकी मूर्त्ति, दया से युक्त है। सुहृद लोगों के चित्त में विचरती है क्षोभ दूर फर देती है। सज्जन लोगों के नेत्रों को तृप्त करती है। पण्डित लोगों से प्रणाम करने के योग्य है—उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिनकी मूर्ति दया-युक्त है, सुहृद लोगों के हृदय में विचरती है, सज्जन लोगों के नेत्रों को सन्तुष्ट करती है, डामाडोल चित्त को (क्षोभ को) दूर कर देती है और पण्डित लोगों को नमस्करणीय हैं--उन श्रीभास्करानन्द गुरुजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥

यत्पादपद्मद्वयदर्शनाय नित्यं चतुर्वर्गफलप्रदाय ।
दूरादुपायान्ति नृपा द्विजेन्द्रास्तं भास्करानन्दगुरुं नमामि।।५।।

अन्वयः—चतुर्वर्गफलप्रदाय यत् पादपद्मद्वयदर्शनाय । नृपाः द्विजेन्द्राः दूरात् नित्यम् उपायान्ति । तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के देने वाले जिनके चरण कमलों के दर्शन के लिए। राजा लोग और द्विजों में श्रेष्ठ जन दूर से नित्य आया करते हैं उन श्री भास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूँ ।। ५ ।।

भावार्थ—अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष के देने वाले जिन चरणारविन्दों के दर्शन के लिए राजा लोग और द्विजों में श्रेष्ठ लोग दूर से नित्य आया करते हैं उन श्री भास्करानन्द गुरु जी को मैं प्रणाम करता हूँ ।। ५ ।।

दिगम्बरं दिक्पतिवन्द्यमानं
सानन्दमानन्दवनैकसिंहम् ।
कृतारिषड्वर्गजयं शुभाशयं
तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ ६ ॥

अन्वय:—दिगम्बरम् दिक्पतिवन्द्यमानम् । सानन्दम् आनन्दवनैकसिंहम् कृतारिषड्वर्गजयम् शुभाशयम् तम् भास्करानन्दगुरुम् (अहम्) नमामि ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—दिगम्बर हैं और दिशा के स्वामियों द्वारा जिसे प्रणाम किया जाता है। आनन्दयुक्त हैं और आनन्दवन के एक सिंह समान हैं काम आदि छह शत्रुओं को जीत चुके हैं और अच्छी वासना वाले हैं—ऐसे उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

भावार्थ—यद्यपि दिगम्बर हैं तथापि दिशा के स्वामी अर्थात् बड़े-बड़े राजा लोग उन्हें प्रणाम किया करते हैं। आनन्द से युक्त हैं और आनन्द-वन के एक सिंह हैं अर्थात् आनन्द-समूहों के मध्य में विराजमान हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि षट् शत्रुओं को जीत चुके हैं—ऐसे शुभ वासना वाले श्रीभास्करानन्द गुरु जी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

षड्दर्शनज्ञाननिधानमानसं
तत्सद्वचोनित्यविमर्शतत्परम् ।
नैर्गुण्यनिर्धूतमनोमलं परं
तं भास्करानन्दगुरुं नतोऽस्म्यऽहम् ।। ७ ।।

अन्वयः—षड्दर्शनज्ञाननिधानमानसम् । तत्सद्वचोनित्यविमर्शतत्परम् । नैर्गुण्यनिर्धूतमनोमलम् तम् परम् । भास्करानन्दगुरुम् अहम् नतः अस्मि ।। ७ ।।

अन्वयार्थ—जिसका मन षड्दर्शनों के ज्ञान का खान है । और उन शास्त्रों के उत्तम वचनों के विचार में सदा लगा रहता है । जिसने निर्गुणता से मन के मल को दूर कर दिया है उस सर्व श्रेष्ठ । श्रीभास्करानन्द जी गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ ।। ७ ।।

भावार्थ—जिनका मन मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, वेदान्त और योग–इन शास्त्रों के ज्ञान का निधान है, इन शास्त्रों के उत्तम वचनों के विचार में सदा लगा रहता है और रजोगुण, तमोगुण से वियुक्त होने के कारण मन मलिनता-रहित है—उन सर्वश्रेष्ठ श्रीभास्करानन्द गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ ।। ७ ।।

यस्तत्त्वमस्यादिविचारदक्षः
स्वच्छान्तरात्मा श्रुतिमार्गगामी ।
समं सुवर्णं सिकता च यस्य
तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ।। ८ ।।

अन्वयः—यः तत्त्वमस्यादिविचारदक्षः । स्वच्छान्तरात्मा श्रुतिमार्गगामी । यस्य सुवर्णम् सिकता च समम् । तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ।। ८ ।।

अन्वयार्थ—जो 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों—के विचार में चतुर हैं। इसीसे जिनकी अन्तरात्मा स्वच्छ है और श्रुतिमार्ग में विचरती है। जिनकी दृष्टि में सोना और बालू एकसा है। उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूँ ।। ८ ।।

भावार्थ—जो 'तत् त्वम् असि'—इत्यादि वेदान्त के महावाक्यों के विचार करने में कुशल हैं और इसी से जिनकी अन्तरात्मा स्वच्छ है और श्रुति-मार्ग में विचर रही है तथा जिनके चित्त में (दृष्टि में) सोना और मिट्टी बराबर हैं—उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को मैं प्रणाम करता हूँ ।। ८ ।।

श्रीमन्महेशानुचरः सनाढ्यो
वृन्दावनः सद्गुरुलब्धविद्यः ।
गुर्वष्टकं तेन कृतं प्रसत्त्यै
श्रीमद्गुरूणां करुणाकराणाम् ।। ९ ।।

अन्वयः—श्रीमन्महेशानुचरः सनाढ्यः । वृन्दावनः सद्गुरु-लब्धविद्यः । तेन करुणाकराणाम् श्रीमद्गुरूणाम् प्रसत्त्यै गुर्वष्टकम् कृतम् ।। ९ ।।

अन्वयार्थ—श्रीयुत महादेव जी के अनुचर सनाढ्य वृन्दावन ने । सत् गुरु से विद्या पायी है । उस (वृन्दावन ने) करुणा के सागर श्री गुरु जी की प्रसन्नता के लिए गुरु के अष्टक को रचा है ।। ९ ।।

भावार्थ—श्री महादेव जी के भक्त, सनाढ्य ब्राह्मण, जिन वृन्दावन ने सद्गुरु से विद्या पाई है, उस वृन्दावन ने दया के सागर, श्री गुरु जी प्रसन्न हों—इस लिए गुरु जी के अष्टक का निर्माण किया है ।। ९ ।।

इति श्रीवृन्दावनशर्मविरचितं गुर्वष्टकं सम्पूर्णम्

श्रीयतीन्द्रस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

अथाद्यं विभुं विघ्नराजं गणेशं
शिवानन्ददं शङ्करं सर्वभाजम् ।
प्रणम्याहमानन्दकन्दस्वरूपं
प्रकुर्वे स्तवं तं यतेर्विश्ववन्द्यम् ।। १ ।।

अन्वयः—अथ आद्यम् विभुम् विघ्नराजम् गणेशम् । शिवानन्ददम् सर्वभाजम् शङ्करम् प्रणम्य । अहम् यतेः आनन्दकन्दस्वरूपम् विश्ववन्द्यम् तम् स्तवम् प्रकुर्वे ।। १ ।।

अन्वयार्थ—अब आद्य परमसमर्थ विघ्नों के राजा श्रीगणेश जी को । और शुभ आनन्द के दाता सर्वशक्तिमान् शिव जी को प्रणाम करके। मैं यतीन्द्र जी के आनन्दकन्द स्वरूप जगत् वन्द्य उस स्तोत्र को करता हूँ ।। १ ।।

भावार्थ—सबके आदि, परमसमर्थ, विघ्नों के राजा श्री गणेश जी को और शुभ आनन्द के देनेवाले सर्व-शक्तिमान् शिव जी को प्रणाम करके मैं यतीन्द्र जी के आनन्दकन्दस्वरूप जगत्वन्द्य स्तोत्र को रचता हूँ ।। १ ।।

पितृमातृगुरुं परिपूज्य गुणै-
र्यतिमार्गमलं सुखदं सुखदैः ।
अदधात् परिभाव्य सुखं विषयं
कुलमानमलं परिहाय गृहम् ।। २ ।।

अन्वयः—सुखदैः गुणैः पितृमातृगुरुम् परिपूज्य । सुखम् विषयम् परिभाव्य । कुलमानम् गृहम् अलम् परिहाय । अलम् सुखदम् यतिमार्गम् अदधात् ।। २ ।।

अन्वयार्थ—सुख के देनेवाले, गुणों से माता पिता गुरु की पूजा करके । विषय-सुख के विचार का भी अनादर करके । और कुल के मान को और घर को बिलकुल छोड़कर अतिसुखदायी यति के मार्ग को धारण किया ।। २ ।।

भावार्थ—सुखदायी अपने गुणों से माता, पिता और गुरु की पूजा करने के पश्चात् सुख के विषय—स्त्री, पुत्र, धन आदि का अनादर (त्याग कर) अथवा विषय-सुख कर कुल के मान को और घर को बिलकुल छोड़ कर उन्होंने अति सुखदायी यति के मार्ग संन्यास को धारण किया ।। २ ।।

शरीरान्तकाले द्वयोस्तत्र गत्वाऽ-
ददाद् ब्रह्मचैतन्यपूर्णं मनोजम् ।
तदा ज्ञानमानन्दकन्दं स्वपित्रोः
सदा तं यतिं भास्करानन्दमीडे ।। ३ ।।

अन्वयः—यः स्वपित्रोः द्वयोः शरीरान्तकाले मनोजम् तत्र गत्वा । ब्रह्मचैतन्यपूर्णम् ज्ञानम् अददात् । तम् आनन्दकन्दम् यतिम् भास्करानन्दम् सदा ईडे ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—जिन्होंने अपनी माता और पिता—दोनों के शरीरान्त समय में अपनी इच्छा से वहाँ जाकर । ब्रह्मचैतन्य पूर्ण ज्ञान को दिया उस आनन्दकन्द यतीन्द्रजी की सदा स्तुति करता हूँ ।। ३ ।।

भावार्थ—जिन्होंने अपनी माता और पिता—दोनों के मरण-समय में अपनी इच्छा से वहाँ जाकर चैतन्यपूर्ण ब्रह्मज्ञान का उपदेश उन्हें दिया था उस आनन्दकन्द यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की मैं स्तुति सदा करता हूँ ।। ३ ।।

१२

यदा कस्य भाग्योदयेन प्रयाति
स्वपद्भ्यां गृहे तद्गृहं तीर्थरूपम् ।
भवत्यम्बराद्यम्बरं भेदशून्यं
यतिं सर्वदा भास्करानन्दमीडे ॥ ४ ॥

अन्वयः—यदा भाग्योदयेन गृहम् स्वपद्भ्याम् प्रयाति । तद्गृहम् तीर्थरूपम् भवति । (तम्) अम्बराद्यम्बरम् भेदशून्यम् यतिम् भास्करानन्दम् सर्वदा ईडे ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ— जब कभी किसी (दुःखी के) भाग्य के उदय होने से दुःखी के घर को अपने चरणों से जाते हैं। उसका घर तीर्थस्वरूप हो जाता है। उस दिगम्बर भेद-रहित, यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ— जब कधी (कभी) भाग्य के उदय होने से किसी दुःखी पुरुष के घर को अपने चरणों से पवित्र करते हैं तक उसका घर तीर्थस्वरूप पवित्र हो जाता है। ऐसे जगत्-पावन उस दिगम्बर भेद रहित यतीन्द्र श्रीभास्करानन्द जी की मैं सदा स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

आनन्दकाननिवासमजन्मनिष्ठं
वातप्रवृत्तिमचलं भवभावशून्यम् ।
भाग्योदयं वितनुते सततं जनानां
ब्रह्माण्डतीर्थहृदयं शिवदं तमीडे ॥ ५ ॥

अन्वयः—(यः) सततम् जनानां भाग्योदयम् वितनुते । तम् आनन्दकाननिवासम् अजन्मनिष्ठम् । वातप्रवृत्तिम् अचलम् भवभावशून्यम् । शिवदम् ब्रह्माण्डतीर्थहृदयम् ईडे ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(जो) सदा जनों के भाग्य का उदय कर देते हैं । उस आनन्द वन के रहने वाले ब्रह्म में तत्पर । श्वास के रोध में प्रवृत्त, स्थिर, संसारी भाव से रहित, कल्याण के दाता और ब्रह्माण्ड भर के तीर्थस्वरूप हृदयवाले हैं उस (यतीन्द्र महाराज) की स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो सदा भक्तजनों के भाग्य का उदय किया करते हैं—उन आनन्दवन के रहने वाले, अजन्मा में अर्थात् परब्रह्म चिन्तन में संलग्न–प्राणायाम में लगे हुए स्थिर, संसारी भाव से रहित, कल्याण के दाता और ब्रह्माण्ड भर के तीर्थरूप हृदय वाले अर्थात् अति-पवित्रान्तःकरण श्री यतीन्द्र महाराज की मैं स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

कृतो येन यज्ञस्तपो दानतीर्थे
भवत्याशु बुद्धिर्विशाला बुधेन ।
तया सच्चिदानन्दसङ्गस्य सङ्गं
तदा तेन मोक्षं यतीन्द्रं तमीडे ।। ६ ।।

अन्वय—येन बुधेन तपः (कृतम्) दानतीर्थे (कृते) यज्ञः कृतः । (तस्य) बुद्धिः आशु विशाला भवति । तया सच्चिदानन्दसङ्गस्य सङ्गम् । (प्राप्नोति) तदा तेन मोक्षम् (प्राप्नोति) (एतादृशम्) यतीन्द्रम् ईडे ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—जिस पण्डित द्वारा तप, दान, तीर्थ-सेवा और यज्ञ किया गया है (उसकी)। बुद्धि शीघ्र बड़ी हो जाती है। उस बुद्धि के प्रभाव से सच्चिदानन्द में तत्पर (यतीन्द्र) का सङ्ग प्राप्त होता है। तब उस सङ्ग के प्रभाव से मोक्ष को वह पाता है। ऐसे ज्ञानद यतीन्द्र जी की स्तुति करता हूँ ।। ६ ।।

भावार्थ—जिस पण्डित ने तप, दान, तीर्थसेवा और यज्ञ किया है, पहले उसकी बुद्धि शीघ्र बड़ी (महान्) हो जाती है और उस बुद्धि के प्रभाव से सच्चिदानन्द परमेश्वर में रत, यतीन्द्र श्रीभास्करानन्द जी का सङ्ग प्राप्त होता है। तब यतीन्द्र जी सङ्ग के प्रभाव से मोक्ष मिलता है। ऐसे यतीन्द्र जी महाराज की मैं स्तुति करता हूँ ।। ६ ।।

विभुं विश्वनाथं सदोदारकीर्त्ति
शिवं भोगदं रोगकालं विशालम् ।
प्रसन्नेन्द्रियं धर्ममूलं वरेण्यं
सदा ध्यानगं भास्करानन्दमीडे ।। ७ ।।

अन्वयः—विभुम् विश्वनाथम् सदोदारकीर्त्तिम् । शिवम् भोगदम् रोगकालम् विशालम् । प्रसन्नेन्द्रियम् धर्ममूलम् वरेण्यम् । ध्यानगम् भास्करानन्दम् सदा ईडे ।। ७ ।।

अन्वयार्थ—समर्थ, सबके नाथ, जिनकी सदा उदार कीर्ति है। शिव स्वरूप और कल्याण के देने वाले, रोगों के काल, सबसे बड़े। प्रसन्न चित्त, धर्म के मूल, भजन के योग्य। ध्यान में मगन श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—शाप और वर देने में समर्थ, सबके स्वामी और जिनकी कीर्त्ति सदा उत्तम है ऐसे शिवस्वरूप, सुख-भोग के देने वाले, संसार-रोग के नाश करने वाले, सर्वश्रेष्ठ, प्रसन्न चित्त, धर्म के मूल, भजन करने के योग्य और ध्यान में मगन—ऐसे श्री भास्करानन्द जी की मैं सदा स्तुति करता हूँ ॥ ७ ॥

एकं कृत्वा प्रकृतिपुरुषौ हृद्यलं संविधाय
स्वच्छं मत्वा तमपि विमलं ब्रह्मरूपं निनाय ।
मानं त्यक्त्वा जगति सकलं निर्विकल्पं च धृत्वा
ध्यानं नित्यं चलति सरितः कूलमूलाङ्कितेन ।। ८ ।।

अन्वयः—प्रकृतिपुरुषौ हृदि कृत्वा । तयोः एकम् ब्रह्मरूपम् संविधाय । तदपि विमलम् स्वच्छम् मत्त्वा निनाय । जगति सकलम् मानम् त्यक्त्वा । निर्विकल्पम् ध्यानम् च धृत्त्वा सरितः कूलमूलाङ्केन चलति ।। ८ ।।

अन्वयार्थं—(जो) प्रकृति-पुरुष को हृदय में एक करके । उन दोनों को एक ब्रह्मरूप (ठहरा) कर । उसको भी विमल स्वच्छ मान कर प्राप्त हुए हैं । और जगत् में सब मान को छोड़कर । निर्विकल्प ध्यान में (सावधि में) स्थित होकर सदा गङ्गा-तट में विचरते हैं ।। ८ ।।

भावार्थ—जिन्होंने प्रकृति और पुरुष को विचार कर दोनों को एक ब्रह्म ठहराया है तथा उनको भी विमल शुद्ध ब्रह्म मान माना है ऐसे यतीन्द्रजी संसार में सब मान को छोड़ उसी ब्रह्म के निर्विकल्प ध्यान में स्थित हो सदा गङ्गा जी के किनारे-किनारे विचरते हैं ।। ८ ।।

सदा निर्विकल्पं निरीहं यतीन्द्रं
निराधारधारं प्रकाशस्वरूपम् ।
प्रसन्नं सदा ब्रह्मलीनं कुलीनं
प्रसिद्धं सदा भास्करानन्दमीडे ।। ९ ।।

अन्वयः—सदा निर्विकल्पम् निरीहम् निराधारधारम् । प्रकाशस्वरूपम् सदा प्रसन्नम् ब्रह्मलीनम् कुलीनम् प्रसिद्धम् यतीन्द्रम् भास्करानन्दम् सदा ईडे ।। ९ ।।

अन्वयार्थ—सदा विकल्प (करके) से रहित, इच्छा-रहित और अवलम्ब-रहित । प्रकाश स्वरूप, सदा प्रसन्न, ब्रह्म में लीन, कुलीन और प्रसिद्ध श्रीभास्करानन्द जी को सदा स्तुति करता हूँ ।

भावार्थ—जो सदा विकल्प से रहित हैं, इच्छारहित हैं, जिस मनुष्य का कोई अवलम्ब नहीं है उनके भी अवलम्ब हैं, प्रकाश-स्वरूप हैं, ऐसे सदाप्रसन्न, ब्रह्मविचार में लीन, कुलीन लोकविख्यात, यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की मैं सदा स्तुति करता हूँ ।। ९ ।।

दिनेशानलौ देहशीतं यथा
सतां संगमोऽज्ञानतापं तथा ।
बोधरूपं हरत्याचलं सामदं
तं यतिं भास्करानन्दमीडे कृशम् ।। १० ।।

अन्वमः—दिनेशानलौ यथा देहशीतम् (हरतः) सताम् संगमः तथा अज्ञानतापम् हरति । तम् आचलम् बोधरूपम् सामदम् कृशम् यतिम् भास्करानन्दम् ईडे ।। १० ।।

अन्वयार्थ—सूर्य और अग्नि जैसे देह के शीत को हर लेते हैं। और सज्जनों का संगम जैसे अज्ञानरूप सन्ताप का नाश करता है। उस पूर्व में तीर्थभ्रमणकारी ज्ञानरूप शान्ति के देने वाले कृश स्वरूप यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की स्तुति करता हूँ ।। १० ।।

भावार्थ—सूर्य और अग्नि के सदृश जो देह के शीत को हर लेते हैं और सज्जनों के संगम के समान अज्ञानरूप सन्ताप का नाश करने वाले हैं, सज्जन श्रेष्ठ, पूर्व में सर्व तीर्थभ्रमणकारी, ज्ञानस्वरूप, शान्ति के देने वाले और कृशस्वरूप यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की मैं स्तुति करता हूँ ।।१०।।

मनसो ब्रह्मणश्चैव कश्चिद् भेदो न दृश्यते ।
सविकल्पं मनः प्रोक्तं निर्विकल्पं तदुच्यते ।। ११ ।।

अन्वयः—मनसः ब्रह्मणः चैव । कश्चित् भेदः न दृश्यते । मतः सविकल्पम् प्रोक्तम् । निर्विकल्पम् तद् उच्यते ।। ११ ।।

अन्वयार्थ—मन का और ब्रह्म का कोई भेद नहीं देखा जाता है । मन को सविकल्प कहा है । और ब्रह्म निर्विकल्प कहा गया है ।। ११ ।।

भावार्थ—मन में और परब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है अर्थात् दोनों यद्यपि एक हैं तथापि जब तक मन में विकल्प करता रहता है तब तक मन कहा जाता है और जब इसका विकल्प छूट जाता है तब वही ब्रह्म कहा जाता है ।। ११ ।।

एवंभूतं मनो यस्य यतीन्द्रं तमहं भजे ।
गततृष्णं भवातीतमाऽऽनन्दवनचारिणम् ।। १२ ।।

अन्वयः—यस्य मनः एवम् भूतम् अहम् तम् गततृष्णम् भवातीतम् आनन्दवनचारिणम् यतीन्द्रम् भजे ।। १२ ।।

अन्वयार्थ—जिसका मन ऐसा है मैं उस तृष्णा-रहित, संसार से परे, आनन्दवन में विचरने वाले यतीन्द्र जी का भजन करता हूँ ।। १२ ।।

भावार्थ—जिसका मन उक्त प्रकार का है अर्थात् विकल्प-रहित होने से ब्रह्मरूप सा है, मैं उस तृष्णारहित संसार से परे, वर्त्तमान आनन्दवन अर्थात् काशीवासी श्री यतीन्द्रजी का भजन करता हूँ ।। १२ ।।

महादेवः शुक्लो वदति भवतापानलकृशान्
जनान् काशीवासं झटिति सुखसिन्धुं सुकृतिनः ।
जना ज्ञानायैवं भजत भवपोतं सुकृतिनं
यतीन्द्रं सानन्दं परमममलं तं खवसनम् ।। १३ ।।

अन्वयः—महादेवः शुक्लः भवतापानलकृशान् जनान् वदति । सुकृतिनः जनाः ज्ञानाय काशीवासम् सुखसिन्धुम् । भवपोतम् सुकृतिनम् परमम् सानन्दम् अमलम् । खवसनम् यतीन्द्रम् तम् (यूयम्) भजत ।। १३ ।।

अन्वयार्थ—महादेव शुक्ल संसार के सन्ताप से पीडित जनों से कहता है कि हे पुण्यवान् लोगों ! ज्ञान के लिए काशी जी में वास करने वाले सुख के सागर, संसार रूप समुद्र के नौका रूप, पुण्यवान्, श्रेष्ठ आनन्द-युक्त, निर्मल दिगम्बर, उस यतीन्द्र का तुम लोग भजन करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—महादेव शुक्ल, संसार के सन्तापरूपी अग्नि की पीडा से दुर्बल मनुष्यों से कहते हैं कि ऐ ! पुण्यवान् लोगो ! ज्ञान का लाभ हो, इस लिए काशी जी में वास करने वाले, सुख के सागर, भवसागर के जहाज अर्थात् संसार से उद्धार करने वाले, पुण्यवान्, श्रेष्ठ, आनन्दयुक्त, निर्मल और दिगम्बर जो यतीन्द्र जी हैं तुम लोग उनका भजन करो ॥ १३ ॥

इदं स्तोत्रं पठेन्नित्यं यो यतेः प्रयतोऽनिशम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति भास्करानन्दरूपिणः ।। १४ ।।

अन्वयः—यः प्रयतः भास्करानन्दरूपिणः यतेः इदम् स्तोत्रम् नित्यम् पठेत् । सः अनिशम् सर्वान् कामान् अवाप्नोति ।। १४ ।।

अन्वयार्थ—जो तत्पर होकर अनिन्द्य श्री भास्करानन्द यतीन्द्र जी के इस स्तोत्र को नित्य पढ़े। वह सदा सब कामनाओं को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो एकाग्र-चित्त मनुष्य, यतीन्द्र, अनिन्द्य, श्री भास्करानन्द जी के इस स्तोत्र को नित्य पढ़ता है वह सदा सब मनोरथों को प्राप्त कर लेता है अर्थात् उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं ।। १४ ।।

इति श्रीमहादेवशुक्लविरचितं यतीन्द्र स्तोत्रं
सम्पूर्णम्

श्लोकत्रयम्

स्वामिन्नमस्ते नतलोकबन्धो
कारुण्यसिन्धो पतितं भवाब्धौ ।
मामुद्धरात्मीयकटाक्षदृष्टया
ऋज्वातिकारुण्यसुधाभिवृष्टया ।। १ ।।

अन्वयः—हे स्वामिन् हे नतलोकबन्धो हे कारुण्यसिन्धो ! ते नमः । भवाब्धौ पतितम् माम् ऋज्वातिकारुण्यसुधाभिवृष्टया आत्मीयकटाक्षदृष्ट्या उद्धर ।। १ ।।

अन्वयार्थ—हे स्वामी हे नम्र लोगों के रक्षक हे करुणा के समुद्र ! आप को नमस्कार है। भवसागर में पड़े हुए मुझे सरल कृपायुक्त अमृत मयीद की वृष्टि रूपी अपनी कटाक्षदृष्टि से उबारिये ।। १ ।।

भावार्थ—हे स्वामी, हे नम्र लोगों के रक्षक, हे करुणा के समुद्र, आपको नमस्कार है। भव-सागर में डूबता जो मैं हूँ सो सरल और अति करुणा युक्त, अमृत बरसने वाली अपनी कटाक्षदृष्टि से मेरा उद्धार कीजिए ।। १ ।।

दुर्वारसंसारदवाग्नितप्तं दोधूयमानं दुरदृष्टपातात् ।
भीतं प्रपन्नं परिपाहि मृत्योः शरण्यमन्यं यदहं न जाने ।।२।।

अन्वयः--दुर्वारसंसारदवाग्नितप्तम् । दुरदृष्टपातात् दोधूयमानम् । मृत्योः भीतम् प्रपन्नम् (माम्) परिपाहि । यत् अहम् अन्यम् शरण्यम् न जाने ।। २ ।।

अन्वयार्थ—जिसका वारण नहीं हो सकता ऐसे संसार की दावाग्नि से सन्तप्त और दुष्ट अभाग्य के उदय से काँपते हुए । मृत्यु से भीत और शरणागत मेरी रक्षा कीजिए । क्योंकि मैं दूसरे रक्षक को, शरण्यको, नहीं जानता ॥ २ ॥

भावार्थ--जिसका वारण नहीं हो सकता ऐसी संसार की दावाग्नि से सन्तप्त और दुष्ट अभाग्य के आने से काँपता हुआ और मृत्यु-भय से डरता हुआ आपकी शरण में आया हूँ । मेरी रक्षा कीजिए क्योंकि मैं आपके सिवा और दूसरे शरण्य को, रक्षा करने वाले को नहीं जानता ॥ २ ॥

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो
वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः ।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जना
हेतुं विनान्यानपि तारयन्तः ॥ ३ ॥

अन्वयः—स्वयम् भीमभवार्णवम् तीर्णाः । वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः हेतुम् विना अपि अन्यान् तारयन्तः । शान्ताः महान्तः सन्तः जनाः निवसन्ति ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ—शान्त-स्वभाव बड़े सज्जन लोग । आप भयंकर संसार समुद्र के पार पहुँच गए हैं । बसन्त ऋतु के समान लोकों का हित करते हुए । कारण के विना भी औरों को तारते हुए निवास करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—शान्तिचित्त, महासन्तजन, आप भयानक संसार समुद्र के पार पहुँच गए हैं । फिर भी जेसे शिशिर ऋतु के क्रूर स्वभाव से कुरूप वृक्षों को नवपल्लव-दान से सुशोभित करता वसन्त ऋतु विचरता रहता है इसी प्रकार लोगों का हित करते हुए और कारण के विना ही संसार-सागर से उद्धार करते हुए आप यहाँ वास कर रहे हैं ॥ ३ ॥

इति मैथिलस्वामिकृतप्रार्थनायां श्लोकत्रयम्

गुरुपञ्चरत्न

कवित्त

चंप चपला के कमला के चंद्रमा के,
चारु हरण प्रभा के जाके अँग उजियारे हैं ।
सिन्धु सुखमा के, हैं बिहीन उपमा के,
कुन्द कैरव कपूर देखि दुति हिय हारे हैं ।
लक्षिमन समन संताप, पाप दासन के,
यमफाँस त्रास स्वामी करण किनारे हैं ।
मोह तम नासी ज्ञानदीपक प्रकाशी,
मानो शम्भु अविनाशी काशी नरतन धारे हैं ॥ १ ॥

अधरम दारण पसारण धरमन के,
श्रुतिमत मण्डन पखण्डन निकारे हैं ।
अधम उधारण सुधारण स्वदासन के,
विपति विदारण परम सुखकारे हैं ।
लक्षिमन दोष दुख दारिद दरण,
असरण के सरण स्वामी चरण उदारे हैं ।
मोह तम नासी ज्ञानदीपक प्रकाशी,
मानो शम्भु अविनाशी काशी नरतन धारे हैं ॥ २ ॥

जोग व्रत साधे कोउ देव अवराधे कोउ,
इन्द्रियन बाँधे जपि बीज आषरण को ।
तीरथ अटन कोउ राम को रटन पाप,
ताप के कटन शोधे अन्तःकरण को ।

वेदमत धारे कोउ करत अचारे कोऊ,
जग व्यवहारे त्यागि चाहत तरन को।
मेटि सब दोषो देहु आपनो परोसो,
लक्षिमन को भरोसो स्वामी रावरे चरण को ॥ ३ ॥

जप तप ध्यान को न सुरसरि न्हान को,
न हरि गुन गान को न ब्रह्म आचरण को।
कानन निवास को न जोगिन के पास को,
न आस उपवास को न यन्त्र के भरण को।
दृढ़ ज्ञान ध्यान को न श्रुति औ पुराण को,
न पूजन विधान को न देव पितरण को।
मेटि सब दोषो देहु आपनो परोसो लक्षिमन को,
भरोसो स्वामी रावरे चरण को ॥ ४ ॥

अरथ गनेश के, दिनेश के धरम चारु,
कामना भरण कामशत्रु चित धर्‍यौ हैं।
मुक्ति कमलेस के धनेश के सुधन भयो,
जुक्ति जगदम्ब के दयाते अनुसर्‍यो हैं।
भुवन बनाइवे को विक्रम विरंचि पायो,
लक्ष्मिन स्वामि सांची जानि यह अर्‍यौ हैं।
धारिवे धरा के शेष तारिवो तरंग गंग,
अधम उधारिबो तिहारे बाट पर्‍यौ हैं ॥ ५ ॥

इतिश्रीं लाल लक्षिमन सिंह कृतं
गुरुपञ्चरत्नं समाप्तम् ॥

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

कवित्त

बैठो बघम्बर पै है दिगम्बर मेटत दारिद नम्बर लेश को ।
शीश पै गंग पिये नित भंग सुअंग भुजंग है कंकण शेष को ।।
ऐसो अनूप सो देव सुरक्षहि यज्ञबहादुर सिंह नरेश को ।
काह करै गो रिसाय कोई शिर पर कर जा के हमेश महेश को ।।१।।

वेद विधान से पूजे सदा शिव जाकी शिवै में रहै चित्त की गति ।
भालविभूति शिवाक्ष के माल करै द्विज को लखि कै तिनही नित ।।
दान दया दरिआव महा मति यज्ञबहादुर सिंह महिपति ।
काह करै नरपाजी कोई शिव जातै रहै नित राजी सतीपति ।।२।।

कवि कोविद केते गुनीजन केतिक दूर सो आवत गावत कीरति ।
धन भूषण वाहन दै तिनको नित मेटत दारिद की लिपी की तति ।।
सुचि नीति निधान सुरेश समान सो यज्ञ बहादुर सिंह महीपति ।
कोई रूसि के काह करे जिनके ऋषि से गुरु भास्करानंद यती पति ।।३।।

वास करै अविमुक्त में नित्य दिगम्बर भोगत जो जगनि को ।
केते नरेश महान धरे पदपैं शिर जाके करे विनती को ।।
कै करुणा से कियो निज सेवक यज्ञबहादुर भूमिपति को ।
काह करै गो रिसाय कोई है जो सेवक भास्करानन्द यति को ।।४।।

ब्रह्म समान अमान सदा समता करै रंक करोर पती को ।
त्यागि विषै विष से अवधूत पुनीत करे विष सो धरती को ।।
भागि भरो जन जो जग में ढिग जाय करै के लिये विनती को ।
लोचन गोचर सोई करे भवमोचन भास्करानन्द यती को ।।५।।

आस तजे न धरे तनवास निरंतर आनन्द कानन वासी ।
जाहिर योग जहान में जासु किए नति के अघ ओघ विनासी ।।
चारि पदारथ को फल देत मनो महि मैं कैलाश के बासी ।
पूरि हैं काम सबै मन के भज भास्करानन्द यती अविनासी ।६।

वसन विहीन लीन पुरुष पुरातन में
काशिका पुरी में नित करत निवास है ।
दरस के हेत जाके धरत धरा मैं पद
पाप जरि जात घन पाय ज्यों जवास है ।।
धनद सिहात पाकशासन शकात कलि
मल दलि जात यम खात तासो त्रास है ।
आनन्द को कन्द स्वामी भास्करानन्दजी
के चरणसरोज करै जाके हिय वास है ।। ७ ।।

जावे न क्यों जन तू अविमुक्त सदा
शिवस्वामी विमुक्ति लखावै ।
संतत सम्पति देत सबै जन
को जग में अभिलाष पुरावै ।।
भास्करानन्द यतीपति के पद-
पंकज में चित जो नित लावै ।
जारन पाप अरण्य शरण्य
सुरेश समीप सो आसन पावै ।। ८ ।।

इत्यष्टकं समाप्तम् ।।
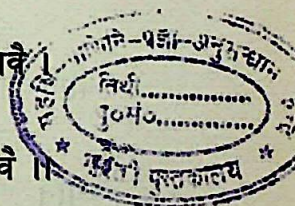
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

कवित्त

विमल विवेक एक ब्रह्म को विचार सार,
वेदन को जानि श्रुतिपथ विचरन हैं।
करुणा समान ज्ञान दान में प्रमान सदा,
काम क्रोध लोभ मोह मद के हरन है॥
कलिमल नाशन प्रकाशन प्रकाश,
जग जाहिर परमहंस जन के शरन है।
वारिज वरन दुख दारिद दरन स्वामी,
भास्करानन्द महाराज के चरन है॥ १॥
गति मति दायक सहायक सुयोगिनके,
होत ही दरश पापपुंज के हरण हैं।
योगीनजन धनिक धरेश धरामंडल के,
जासु रज ही को करै भाल आभरण हैं॥
ध्यान के धरत ज्ञान परम प्रकाश करै,
वृन्दावन सदा ब्रह्म पद वितरण हैं।
वारिज वरण सुख संपति करन,
स्वामी भास्करानन्द महाराज के चरण है॥ २॥

॥ इति शुभम् ॥

श्लोकानुक्रमणी

सर्वेषां स्तोत्राणाम्